अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका — अप्रैल २०२१

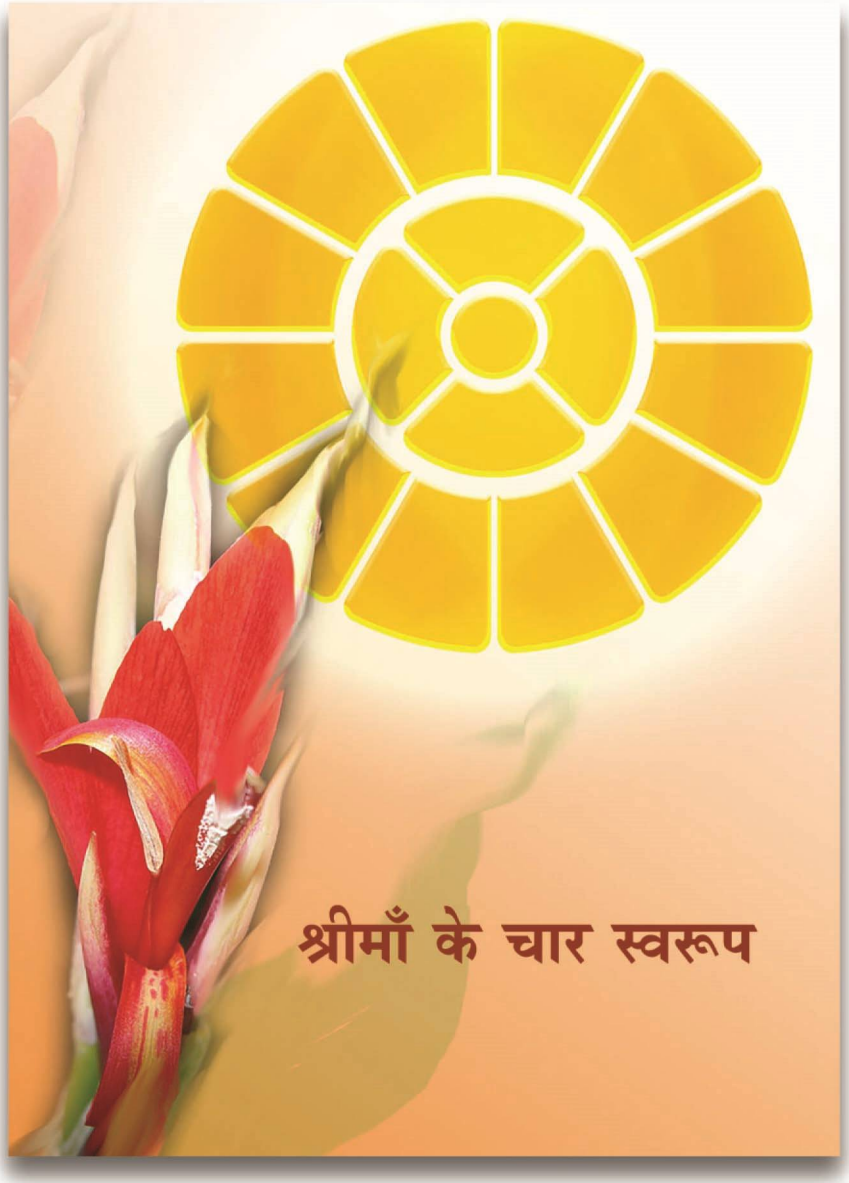

अग्निशिखा अप्रैल २०२१ **वर्ष ५१, अंक ९, पूर्णांक ६०८**

विषय-सूची

श्रीमाँ के चार स्वरूप

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
आद्याशक्ति	५
चार महान् स्वरूप	८
महेश्वरी	११
महाकाली	१३
महालक्ष्मी	२१
महासरस्वती	२७
आनन्दमयी माँ	३२
राधा की प्रार्थना	३६
प्रतिमा तथा चित्र	३९

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी		४३
श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार	**'श्रीमातृवाणी' से**	५८
पायल की झंकार	वन्दना	५१
सरस्वती-वन्दना		५४

सन्देश

भगवती माता भगवान् की चित्-शक्ति हैं—
जो समस्त वस्तुओं की जननी हैं।

श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : श्रीअरविन्द द्वारा सम्पादित अनगिनत महान् कार्यों में से एक था, शाश्वत प्राचीन धर्मों को उनकी उच्चतम पवित्रता में पुनः प्रतिष्ठित करना। विदेशी आक्रमणों तथा आधुनिक वैज्ञानिक मन ने व्यापक रूप से स्वयं को बहिर्मुखी बुद्धि के साथ एक कर के कितने ही सूक्ष्म रहस्यों और गूढ़ सत्यों को खो दिया जिनके बारे में हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि बहुत कुछ जानते थे। इनमें से एक था—एकमेव भगवान् की शक्तियों और रूपों का प्रतिनिधित्व करने वाले देवी-देवताओं की उपस्थिति। विश्व में कार्यरत शक्तियाँ अन्धी यान्त्रिक शक्तियाँ नहीं बल्कि ऐसी सचेतन शक्तियाँ तथा सत्ताएँ हैं जो जगत् की विभिन्न गतियों में कार्यरत हैं। यद्यपि हैं ये असंख्य लेकिन फिर भी, अन्ततः इन्हें उन चार महान् 'शक्तियों' में विभाजित किया जा सकता है जो 'परमा भगवती माता' की पहली अभिव्यक्तियाँ हैं और जो मानव आत्मा और मानव स्वभाव को 'माता' के प्रति उद्घाटित होने और जगत् में उनका यन्त्र बनने में सहायता करती हैं। श्रीअरविन्द, जिनका इन शक्तियों और सत्ताओं के साथ सीधा सम्पर्क था, वे इन्हें न केवल जीवन्त 'वास्तविकताओं' और 'उपस्थितियों' की भाँति, बल्कि दिव्य माँ के वर्तमान शरीर में प्रत्यक्ष रूप से मूर्तिमान् देखते थे।

हमारा यह अंक माँ के इन चार महान् स्वरूपों को समर्पित है जिनके बारे में श्रीअरविन्द ने गभीर रहस्योद्घाटन किये हैं।

आद्याशक्ति

आद्याशक्ति मौलिक 'शक्ति' है, इसलिए माँ का उच्चतम रूप है। केवल जिस स्तर से व्यक्ति उन्हें देखता है, उसके अनुसार वे भिन्न तरीक़े से अभिव्यक्त होती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६६ **श्रीअरविन्द**

आद्याशक्ति

परात्परा शक्ति

माँ की चार शक्तियाँ उनके चार प्रमुख व्यक्तित्व हैं। वे उनकी दिव्यता के अंश और साकार रूप हैं जिनके द्वारा वे अपने जीवों पर क्रिया करती हैं और लोक-लोकान्तर की अपनी सृष्टियों में व्यवस्था और समस्वरता लाती हैं और अपनी हज़ारों शक्तियों के कार्य-सूत्र का सञ्चालन करती हैं। माता हैं तो एक ही, पर वे हमारे सामने भिन्न-भिन्न रूपों में आती हैं। उनकी अनेक शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं। उनसे निकले हुए बहुत-से रूप और विभूतियाँ हैं जो सृष्टि में उनका काम करते हैं। जिस 'एक' की हम माता के रूप में पूजा करते हैं वे भागवत चित्-शक्ति हैं जो सारी सृष्टि पर छायी हुई हैं। एक होते हुए भी उनके इतने अधिक पहलू हैं कि तेज़-से-तेज़ मन और अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र और विशाल बुद्धि के लिए भी उनकी गति का अनुसरण कर सकना असम्भव है। माता परम-पुरुष की चेतना और शक्ति हैं और वे अपनी सारी सृष्टियों के बहुत ऊपर हैं। फिर भी उनकी गतिविधि की कुछ चीज़ें उनके साकार रूपों के द्वारा देखी और अनुभव की जा सकती हैं और ज़्यादा आसानी से पकड़ में आ सकती हैं क्योंकि भगवती माँ जिन दिव्य रूपों में अपने जीवों के सम्मुख प्रकट होना स्वीकार करती हैं उनके स्वभाव और कर्म ज़्यादा निश्चित और सीमित होते हैं।

जब हम समस्त जीवों को तथा विश्व को धारण करने वाली सचेतन शक्ति के साथ एकता के सम्पर्क में आते हैं तभी माता की तीन प्रकार की सत्ता से अवगत हो सकते हैं। वे परात्पर आद्या परमा शक्ति के रूप में सभी लोकों के ऊपर खड़ी रह कर परम-पुरुष के कभी व्यक्त न होने वाले रहस्य के साथ सृष्टि का नाता जोड़ती हैं। वैश्व रूप में वे सारे ब्रह्माण्ड में बसी हुई, महाशक्ति के रूप में इन सभी सत्ताओं को रचती हैं, इन सब अनगिनत प्रक्रियाओं और शक्तियों को धारण करती हैं और उनमें समायी रहती हैं, वे ही उन्हें सहारा देती हैं और उनका सञ्चालन करती हैं। व्यक्तिगत रूप में वे अपनी सत्ता के इन दोनों अधिक विशाल रूपों की शक्ति को मूर्तरूप देती हैं, उन्हें जीवन देती हैं और हमारे समीप लाती हैं। वे मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृति के बीच की कड़ी बनती हैं।

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहाँ वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम पुरुष उन माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया है। वे ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीज़ें दिव्य चित्-शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहाँ या कहीं और कुछ भी नहीं हो सकता। परम पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीज़ों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय और कोई चीज़ रूप धारण नहीं कर सकती।

अपनी परात्पर चेतना में महाशक्ति, विश्व-माता, परम पुरुष से जो कुछ प्राप्त करती हैं उसे मूर्त रूप देकर अपने बनाये हुए लोकों में स्वयं भी प्रवेश कर जाती हैं। माता की उपस्थिति उन लोकों को अपने दिव्य व्यक्तित्व, अपने धारण करने वाले बल और आनन्द से भर देती है और उन्हें सहारा देती है। इनके बिना उन लोकों का अस्तित्व ही न हो पाता। हम जिसे प्रकृति कहते हैं वह माता का एकदम बाहरी और कार्य-निर्देशक रूप है। वे अपनी शक्तियों और प्रक्रियाओं की समस्वरता की व्यवस्था करती हैं, प्रकृति के कार्यों को आगे बढ़ाती हैं, इन्द्रियों या अनुभव के द्वारा

पकड़ में आ सकने वाली या जीवन की गति के लिए उपयोगी हर वस्तु को प्रकट या अप्रकट रूप से सञ्चालित करती हैं। लोकों में से प्रत्येक, अपने-अपने लोक-संस्थान या विश्व-ब्रह्माण्ड की महाशक्ति की एक लीला के सिवाय और कुछ नहीं है। ये महाशक्ति परात्पर माता की वैश्व आत्मा और वैश्व व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक लोक का वही रूप होता है जो माता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, अपनी शक्ति और सौन्दर्य से सँजोया और अपने आनन्द द्वारा पैदा किया है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४-१५

भगवान् से हमारा मतलब यह है : समस्त ज्ञान जो हमें प्राप्त करना है, समस्त शक्ति जो हमें पानी है, समस्त प्रेम जो हमें बनना है, समस्त पूर्णता जो हमें प्राप्त करनी है, समस्त सामञ्जस्यपूर्ण और प्रगतिशील सन्तुलन जो हमें प्रकाश और आनन्द में अभिव्यक्त करना है, समस्त नूतन और अज्ञात भव्यताएँ जिन्हें चरितार्थ करना है।

—श्रीमाँ

परात्परा माँ

ये ही हैं जिन्हें आद्या शक्ति का नाम दिया गया है; ये विश्वातीत परम चेतना और शक्ति हैं और इन्हीं से सब देवता उत्पन्न हुए हैं, यहाँ तक कि अतिमानसिक ईश्वर भी—वह विज्ञानमय पुरुषोत्तम भी जिनकी शक्तियाँ और व्यक्ति-रूप देवतागण हैं—इन्हीं के द्वारा अभिव्यक्ति में आते हैं।

श्रीअरविन्द

चार महान् स्वरूप

माँ के चार महान् स्वरूप, माँ की जो प्रमुख शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं उनमें से चार रूप, इस विश्व का मार्गदर्शन करने तथा भौतिक लीला के साथ व्यवहार करने के लिए आगे रहते हैं। उनमें से एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशान्त अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बढ़े-चढ़े, सर्वश्रेष्ठ वैभव और सब पर शासन करने वाली महानता का व्यक्तित्व है। दूसरा रूप उनकी भव्य शक्ति के बल को, दुर्धर्ष आवेग को, उनके क्षात्र स्वभाव को, दुर्दमनीय संकल्प को, प्रचण्ड वेग और सारे संसार को हिला देने वाली शक्ति को मूर्त रूप देता है। तीसरा रूप उनकी गभीर और रहस्यमय सुन्दरता, समस्वरता और सामञ्जस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करने वाले आकर्षण और हृदय को जीत लेने वाले लावण्य के कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्‌भुत है। और चौथा स्वरूप उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीज़ में शान्त और यथार्थ पूर्णता के गुप्त, गभीर सामर्थ्य से युक्त होता है। इन स्वरूपों के कुछ गुण हैं—बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामञ्जस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरती पर इन गुणों को लाते हैं और मनुष्य के रूप में आने वाली अपनी विभूतियों में प्रकट करते हैं। जो लोग अपनी भौतिक प्रकृति को माता के सीधे और जीते-जागते प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनके दिव्यता की ओर चढ़ने के अनुपात में ही उनमें इन गुणों की स्थापना होगी। इन चार स्वरूपों के चार महान् नाम हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १७-१८

लेकिन ये चारों एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं न?

कुछ हद तक, लेकिन पूरी तरह नहीं। हमेशा वही चीज़ होती है। एक ऐसी स्वतन्त्रता होती है जो कभी-कभी पूर्ण प्रतीत होती है और, साथ-ही-साथ उन्हें जोड़ने वाला एक घनिष्ठ सूत्र भी होता है, यहाँ तक कि कह सकते हैं कि वह निरपेक्ष होता है। यहाँ, भौतिक जगत् में, केन्द्रीय चेतना हैं महाशक्ति। हाँ, तो उनमें हमेशा ही इन विविध रूपों की क्रियाओं को नियन्त्रित करने की

शक्ति रही है—चाहे वे रूप कितने भी स्वतन्त्र क्यों न हों, और अपनी-अपनी अभीप्सा के अनुसार ही काम करते हों। और फिर भी वे नियन्त्रण कर सकती हैं, इस अर्थ में कि यदि...

उदाहरण के लिए, काली को लो। अगर काली हस्तक्षेप करने का निश्चय करती हैं और 'महाशक्ति'—जिनमें स्वभावतः चीज़ों की ज़्यादा पूर्ण और व्यापक दृष्टि है—देखती हैं कि हस्तक्षेप करने का समय ठीक नहीं है, या बहुत जल्दी है तो वे महाकाली पर दबाव डाल सकती हैं और उनसे कह सकती हैं: "शान्त रहो।" और तब वे शान्त रहने के लिए बाधित होती हैं; और फिर भी वे बिलकुल स्वतन्त्र रूप से काम करती हैं।

लेकिन वे महाकाली को क्रिया करने क्यों नहीं देतीं? क्योंकि यहाँ तो कहा गया है कि अगर महाकाली हस्तक्षेप करें तो जिसके होने में शताब्दियाँ लगतीं वह अभी हो सकता है।

मैं कहती हूँ, इसी के लिए तो महाकाली हैं और वे अपना काम करती हैं। लेकिन काम को देखने का महाकाली का अपना तरीक़ा होता है; और जब तुम्हें पूर्ण दृष्टि प्राप्त हो तो तुम देख सकोगे कि...। वे काम के केवल अपने पक्ष को ही देखती हैं, और जब कोई समग्र को देख सके, तो वह कह सकता है, नहीं, नहीं, यह समय ठीक नहीं है!"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२९-३०

भागवत शक्ति में श्रद्धा

भागवत शक्ति में श्रद्धा हमारे सामर्थ्य के पीछे हमेशा ही बनी रहनी चाहिये और जब शक्ति प्रकट हो जाये तो श्रद्धा असन्दिग्ध और पूर्ण होनी या बन जानी चाहिये। ऐसी कोई चीज़ नहीं जो उनके लिए असम्भव हो, क्योंकि वे चिन्मय शक्ति तथा विराट् भगवती हैं जो सनातन काल से सबका सृजन करने वाली जननी हैं तथा परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता से सुसम्पन्न हैं। सम्पूर्ण ज्ञान, समस्त शक्तियाँ, समस्त सफलता और विजय, समस्त कौशल और कर्म-कलाप उन्हीं के हाथों में हैं और वे परम आत्मा के ऐश्वर्यों तथा समस्त पूर्णताओं एवं सिद्धियों से परिपूर्ण हैं। वे महेश्वरी अर्थात्, परम ज्ञान

की देवी हैं, और सब प्रकार के सत्यों के लिए तथा सत्य के सभी विशाल रूपों के लिए अपनी अन्तर्दृष्टि हमें प्राप्त कराती हैं, हमारे अन्दर अपनी आध्यात्मिक संकल्प-सम्बन्धी यथार्थता, अपनी अतिमानसिक विशालता की शान्ति और संवेगशीलता तथा अपना ज्योतिर्मय आनन्द लाती हैं : वे महाकाली अर्थात्, परम शक्ति की देवी हैं, और समस्त शक्तियाँ, आत्म-बल, तपस् की उग्रतम कठोरता, संग्राम का वेग, विजय और अट्टहास्य उन्हीं के अन्दर विद्यमान हैं, अट्टहास्य ऐसा कि जो पराजय और मृत्यु को तथा अज्ञान की शक्तियों को तृणवत् समझता है : वे महालक्ष्मी हैं, परम प्रेम और आनन्द की देवी हैं, और उसकी देनें हैं—आत्मा की सुषमा, आनन्द की मोहकता और सुन्दरता, अभयदान और प्रत्येक प्रकार का दैवी एवं मानवीय वरदान : वे महासरस्वती हैं, दिव्य कौशल की तथा परम आत्मा के सब कार्यों की अधिष्ठात्री देवी हैं, और जिस योग को कर्म-कौशल, **योगः कर्मसु कौशलम्**, कहा जाता है वह महासरस्वती का ही है, इसी प्रकार दिव्य ज्ञान के नाना उपयोग, आत्मा का अपने-आपको जीवन के क्षेत्र में प्रयुक्त करना और उसकी समस्वरताओं का आनन्द महासरस्वती के ही गुण और कार्य हैं। अपनी सभी शक्तियों और अपने सभी रूपों में वे सनातन ईश्वरी के प्रभुत्वों की परमोच्च भावना को अपने संग रखती हैं; साथ ही, किसी यन्त्र से जिन कार्यों की माँग की जा सकती है उन सब प्रकार के कार्यों के लिए तीव्र और दिव्य सामर्थ्य, सर्वभूतों की सभी शक्तियों के साथ एकता, सहानुभूति एवं सुखदुःखसहभागिता, मुक्त तदात्मता, और अतएव विश्व में कार्य कर रहे समस्त दिव्य संकल्प के साथ स्वयंस्फूर्त एवं फलप्रद सामञ्जस्य —इन सब गुणों को भी वे अपने संग रखती हैं। उनके सान्निध्य और उनकी शक्तियों का घनिष्ठ अनुभव, और हमारे अन्दर और चारों ओर उनकी जो क्रियाएँ हो रही हैं उनके प्रति हमारी सम्पूर्ण सत्ता की सन्तुष्ट स्वीकृति—यह भागवत शक्ति में श्रद्धा की चरम पूर्णता है।

CWSA खण्ड २४, पृ. ७८०-८१

आओ, हम अपने मिथ्यात्व को भगवान् को सौंप दें
ताकि वे उसे आनन्दमय सत्य में बदल दें।

—श्रीमाँ

महेश्वरी

प्रज्ञामयी माँ

राजराजेश्वरी महेश्वरी—चिन्तनशील मन और संकल्प के ऊपर 'बृहत्' में विराजती हैं और इन दोनों को ऊँचा उठा कर और महान् बना कर प्रज्ञा—ज्ञान—और विशालता देती हैं या उनमें उनसे परे की किसी उच्चतर

भव्यता की बाढ़ ला देती हैं। महेश्वरी ही वे ज्ञानमयी और शक्तिशाली माता हैं जो हमें अतिमानसिक अनन्तताओं के प्रति, विश्व-भर की विशालता, सबसे ऊँची ज्योति की भव्यता की ओर, चामत्कारिक ज्ञान के ख़ज़ाने की ओर और माता की शाश्वत शक्तियों की असीम गति के प्रति खोल देती हैं। वे प्रशान्त और अद्‌भुत हैं, सदा ही महान् और स्थिर रहती हैं। उन्हें कोई चीज़ विचलित नहीं कर सकती क्योंकि उनमें सम्पूर्ण ज्ञान है, वे जो कुछ जानना चाहें, वह उनसे छिपा नहीं रहता। वे सभी वस्तुओं को, सभी सत्ताओं को, सबके स्वभाव को और उन्हें चलाने वाले तत्त्वों को, संसार के नियमों और उसके कालचक्र को जानती हैं। वे भूत और वर्तमान को जानती हैं और जानती हैं कि क्या होना चाहिये। उनमें एक ऐसी शक्ति है जो हर चीज़ का सामना करके उस पर अधिकार कर लेती है, उनकी विशाल, अगोचर प्रज्ञा और उत्कृष्ट प्रशान्त बल के आगे अन्त तक कोई नहीं ठहर सकता। वे अपने संकल्प में सम, धीर और अविचल हैं। वे मनुष्यों के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार और चीज़ों और घटनाओं के साथ उनकी शक्ति और उनमें छिपे सत्य के अनुसार व्यवहार करती हैं। उनमें पक्षपात का नाम भी नहीं है पर वे परम पुरुष के आदेश का पालन करती हैं, कुछ को ऊपर उठाती हैं और कुछ को नीचे फेंकती या अपने पास से हटा कर अज्ञानान्धकार में धकेल देती हैं। वे ज्ञानी को अधिक महान् और ज्योतिर्मयी प्रज्ञा—ज्ञान—देती हैं और सूक्ष्म दृष्टिवाले व्यक्ति को अपनी मन्त्रणाओं में स्थान देती हैं, विरोधियों पर उनके विरोध का परिणाम लादती हैं और अज्ञानी और मूर्ख को उसके अज्ञान और अन्धेपन के अनुसार चलाती हैं। वे प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति के अलग-अलग तत्त्वों का, उन तत्त्वों की आवश्यकता, प्रेरणा और माँगे हुए फल के अनुसार व्यवहार करती और उत्तर देती हैं, उन पर ज़रूरी दबाव डालती हैं या फिर उन्हें अपनी पोसी हुई स्वाधीनता में अज्ञान-भरे रास्तों पर समृद्धि या नाश के लिए छोड़ देती हैं। वे सबसे ऊपर हैं, किसी से बँधी नहीं हैं। उन्हें विश्व की किसी चीज़ से लगाव नहीं है। फिर भी उनके अन्दर—औरों की अपेक्षा कहीं अधिक—विश्वजननी का मातृ-हृदय है, क्योंकि उनकी करुणा अनन्त और अखूट है। उनकी दृष्टि में सभी—यहाँ तक कि असुर, राक्षस, पिशाच, विद्रोही और विरोधी भी—उनके बच्चे और उस 'एक' के अंश

हैं। उनका त्यागना भी केवल स्थगित करना है, उनका दण्ड भी कृपा है। लेकिन उनकी करुणा उनकी बुद्धि को अन्धा नहीं बनाती और न उनके कर्म को नियत पथ से डिगाती है। वस्तुओं का सत्य ही उनका एकमात्र लक्ष्य है और ज्ञान ही उनकी शक्ति का केन्द्र। हमारी अन्तरात्मा और प्रकृति को दिव्य सत्य में बदलना उनका उद्देश्य और पुरुषार्थ है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८-१९

"राजराजेश्वरी महेश्वरी मानसी तर्कबुद्धि और इच्छाशक्ति के ऊपर बृहत् में आसीन हैं...।" जिस तरह एक मनोमय लोक, एक प्राणमय लोक आदि हैं, उसी तरह क्या इच्छा-शक्ति का भी कोई लोक है?

मैंने सच्चिदानन्द के प्रसंग में यह बात तुम्हें समझायी है। सच्चिदानन्द जगतों के एकदम मूल में विद्यमान हैं, परन्तु सत्ता की अन्य सभी स्थितियों के पीछे भी एक सच्चिदानन्द विद्यमान हैं। तुम एक मानचित्र बना सकते हो (यद्यपि इससे बहुत अधिक स्पष्ट नहीं होता, यह एक बहुत ग़लत विचार है, पर इससे चीज़ों को समझना अधिक आसान हो जाता है), तुम सत्ता की स्थितियों को एक क्रम-परम्परा के रूप में व्यवस्थित करते हो। तब, पृथ्वी नीचे होती है और 'परात्पर' ऊपर (मैं तुम्हें बताती चलूँ कि यह ठीक ऐसा नहीं है! पर जो हो, इस तरह समझना आसान है), तुम पृथ्वी को नीचे के तल में रखते हो और 'परात्पर' को ऊपरी शिखर पर, और उसे तुम बहुत सारे छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त कर देते हो जिनमें से प्रत्येक टुकड़ा सत्ता की एक स्थिति को सूचित करता है; उससे एक प्रकार की सीढ़ी बन जाती है। और तब, उसके पीछे, तुम्हारी सीढ़ी के पीछे मानों कोई ऐसी चीज़ होती है जो उसे सहारा देती है, जिसके ऊपर वह झुकी होती है। वह कोई दीवार नहीं है पर वह कोई वस्तु है जो तुम्हारी सीढ़ी को सहारा देती है। और वही यथार्थ में विश्व के आकार का प्रथम तत्त्व है। हिन्दू-ग्रन्थों में उसे "सच्चिदानन्द" कहते हैं। वह वहाँ विद्यमान है, सब कुछ उसी पर टिका हुआ है; उसके बिना किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं हो सकता। यही वस्तु है जो धारण करती है, अस्तित्व प्रदान करती है। फिर, यदि तुम चेतना की एक विशेष स्थिति में प्रवेश करो तो तुम, उदाहरणार्थ, उच्चतर मन में

पहुँच जाते हो (कारण, सामान्यतया वहीं पर यह बात अधिक आसानी के साथ होती है; तुमने भौतिक स्तर से आरम्भ किया और धीरे-धीरे, सीढ़ी के एक-एक डण्डे पर, उच्चतर मन तक चढ़ गये), परन्तु सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने की जगह तुम एक प्रकार की अन्तर्मुखीनता की स्थिति में प्रवेश कर जाओ और आकार के बाहर चले जाने की चेष्टा करो, तो तुम आकार से बाहर एक प्रकार की निश्चल-नीरवता में चले जाते हो। तुम अपनी सीढ़ी के डण्डों के बीच में से निकल कर सीधे सच्चिदानन्द में चले जाते हो जो पीछे से सभी चीज़ों को सहारा देता है। और तब तुम्हें अपने मन के द्वारा सच्चिदानन्द का अनुभव प्राप्त हो सकता है। मैं ऐसे लोगों से मिली हूँ जिन्हें यह अनुभव प्राप्त था और जो यह समझते थे कि वे 'परात्पर' की ऊँचाई तक पहुँच गये हैं। क्योंकि वहाँ अनुभव के अन्दर एक प्रकार की समानता है, बहुत अधिक अनुरूपता है, केवल यह मन तक सीमित है, एकमात्र मन ही उसमें भाग लेता है। हाँ, तो, इच्छा-शक्ति के लिए भी यही बात है। सीढ़ी का सहारा होने के बदले यह एक प्रकार की शक्ति है, एक बहुत प्रबल धारा है जो इन सभी स्थितियों के अन्दर से प्रवाहित होती है, ऊपर से शुरू करके—यह वही परात्पर 'संकल्प-शक्ति' है—नीचे भौतिक अभिव्यक्ति में उतर आती है। अतएव, यदि तुम इस स्पन्दन या इस शक्ति के सम्पर्क में आ जाओ तो तुम "इच्छा-शक्ति की स्थिति" में प्रवेश कर सकते हो; अर्थात्, तुम सत्ता की चाहे जिस किसी स्थिति में—भौतिक, प्राणिक, मानसिक आदि में—क्यों न होओ, यदि तुम चेतना और शक्ति की एक विशेष स्थिति में चले जाओ तो तुम इस इच्छा-शक्ति के सम्पर्क में आ जाते हो : वह तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाती है और तुम किसी भी प्रयोजन के लिए उसका उपयोग कर सकते हो। यदि तुम्हारी ग्रहणशीलता सब प्रकार की अहंता से मुक्त हो, यदि तुम शुद्ध, पूर्णतः समर्पित हो और केवल भगवान् से आने वाली चीज़ों को ही स्वीकार करते हो, और यदि तुम उसके साथ अन्य किसी चीज़ को नहीं मिलाते, न तो अहंभाव को और न कामनाओं और न सीमाओं को... हाँ, इस स्थिति को प्राप्त करना ज़रा कठिन है, पर यदि तुम इसे पा लो, तुम इस इच्छा-शक्ति को इसकी मूल स्थिति में, विशुद्ध रूप में ग्रहण कर लेते हो (क्योंकि यह विशुद्ध रूप में नीचे आती है, केवल इसे ग्रहण करने के समय इसमें विकृति आ जाती

है), उस समय, यह तुम्हारी इच्छा होने के बदले भागवत 'इच्छा-शक्ति' की अभिव्यक्ति बन जाती है। और यह बात भौतिक शरीर छोड़े बिना घटित होती है—तुम भौतिक शरीर छोड़े बिना भागवत 'इच्छा-शक्ति' को ग्रहण कर सकते हो। केवल, याद रखो, तुम्हें इसे ग्रहण करते समय बदल देना और विकृत नहीं कर देना नहीं चाहिये, इसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर देना चाहिये। जब तुम कोई चीज़ सम्पन्न करने के लिए एक प्रकार की अदम्य शक्ति अपने अन्दर अनुभव करो, जब तुम अपने-आपसे कहो, "चाहे जो भी मूल्य चुकाना पड़े मैं इसे अवश्य करूँगा, मैं अन्त तक जाऊँगा और अपनी समस्त इच्छा-शक्ति का (क्योंकि तुम हमेशा अपनी इच्छा कहा करते हो) प्रयोग करूँगा", तो तुम इस स्थिति में तब तक नहीं आ सकते जब तक कि तुम इच्छा-शक्ति की इस धारा के सम्पर्क में नहीं आ जाते। केवल, अपनी तुच्छ व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के द्वारा, स्वभावतः ही तुम उसे विकृत कर देते हो और उसे पूर्णतया ग़लत ढंग से व्यवहृत करते हो, और तब तुम्हारा अन्य तत्त्वों के साथ संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। परन्तु तुम यदि वास्तव में एक योगी होओ, तो तुम धारा को ग्रहण करते हो और कोई वस्तु, भौतिक रूप में भी, तुम्हारे कर्म के प्रवेग को बन्द नहीं कर सकती।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४७९-८१

सारा विश्व क्रमशः रूपान्तर की प्रक्रिया में है, अगर तुम योग-साधना को अपनाओ तो तुम अपने अन्दर प्रक्रिया को तेज़ कर सकोगे।

*

योग समस्त जीवन के साथ मेल खाता है।

—श्रीमाँ

कर्म कहीं अधिक आसान मार्ग है, बशर्ते कि व्यक्ति का मन भगवान् का बहिष्कार कर केवल कर्म में ही न जुटा रहे। लक्ष्य होना चाहिये—भगवान्, कर्म तो मात्र एक साधन हो सकता है।

श्रीअरविन्द

महाकाली

शक्तिशालिनी माँ

महाकाली और ही प्रकृति की हैं। विस्तार नहीं ऊँचाई, प्रज्ञा नहीं बल और सामर्थ्य उनकी शक्ति के विशेष गुण हैं। उनमें अत्यधिक तीव्रता है,

सफलता पाने के लिए शक्ति का एक प्रचण्ड आवेग है, एक दिव्य उग्रता है जो हर सीमा और बाधा को छिन्न-भिन्न करने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ती है। उनकी सारी दिव्यता उनके तूफ़ानी-प्रचण्ड कार्यों की भव्यता में फूट पड़ती है; वे तेज़ी और तुरन्त फलदायक प्रक्रियावाली हैं, उनका वार सीधा और तेज़ होता है। वे सामने से ऐसा प्रहार करती हैं जिसके आगे सब कुछ धरा का धरा रह जाता है। असुर के लिए उनका मुख भयानक है, भगवान् से द्वेष करने वालों के विरुद्ध उनका मनोभाव भयंकर और निष्ठुर होता है क्योंकि वे ऐसी रणचण्डी हैं जो कभी युद्ध से पीछे नहीं हटतीं। वे अपूर्णता को नहीं सहतीं, वे मनुष्य के अन्दर अनिच्छुक तत्त्वों के साथ कठोर व्यवहार करती हैं और जो आग्रहपूर्वक अज्ञान और अन्धकार से चिपटे रहते हैं उनके साथ सख़्ती से व्यवहार करती हैं। उनका कोप विश्वासघात, मिथ्याचार और अशुभ के विरुद्ध भीषण और तीव्र होता है। वे भगवान् के कार्य में उदासीनता, उपेक्षा और प्रमाद नहीं सह सकतीं और ज़रूरत पड़ने पर असमय सोने वाले और आवारागर्द को प्रहार द्वारा तीव्र पीड़ा देकर तुरन्त जगा देती हैं। शीघ्रगामी, सरल और ऋजु वृत्तियाँ, निःसंकोच और निर्बाध गतियाँ और धधकती ज्वाला-सी अभीप्सा महाकाली की गति हैं। उनका उत्साह अदम्य है, उनकी दृष्टि और संकल्प गरुड़ की उड़ान की तरह उच्च और व्यापक हैं। उनके चरण ऊँचे मार्ग पर तेज़ी से बढ़ते हैं और उनके हाथ प्रहार करने और आड़े वक़्त सहायता करने के लिए फैले रहते हैं। क्योंकि वे भी माँ हैं और उनका प्रेम भी उनके प्रकोप के जितना ही तीव्र है, उनमें गहरी और प्रगाढ़ उत्कट अनुकम्पा है। अगर साधक उन्हें अपनी पूरी शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने की अनुमति दे, तो उसे रोकने वाली बाधाएँ या आक्रमण करने वाले शत्रु क्षण-भर में भंगुर चीज़ों की तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अगर उनका प्रकोप विरोधियों के लिए भीषण है और उनके दबाव की तीव्रता दुर्बल और भीरु के लिए कष्टदायक है तो महान्, शक्तिशाली और उदात्त लोग उनसे प्रेम करते और उनकी पूजा करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि माता के प्रहार उनके भौतिक आधार के विद्रोही तत्त्वों को ठोक-पीट कर सामर्थ्य और पूर्ण सत्य में बदल देते हैं, उनकी टेढ़ी-मेढ़ी और विकृत चीज़ों को हथौड़े मार-मार कर सीधा कर देते हैं और अशुद्ध तथा दोषपूर्ण चीज़ों को निकाल बाहर करते

हैं। जो कार्य एक दिन में किया जाता है उसमें उनके बिना शताब्दियाँ लग जातीं। उनके बिना आनन्द विशाल और गम्भीर या मृदु, मधुर और सुन्दर तो हो सकता है पर अपनी तीव्रतम प्रगाढ़ता के प्रज्वलित उल्लास को खो बैठेगा। महाकाली ज्ञान को विजयी शक्ति प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और सामञ्जस्य को श्रेष्ठ तथा ऊपर उठती हुई गति देती हैं और पूर्णता के धीमे और कठिन प्रयास को ऐसा वेग देती हैं जो उसकी गति को कई गुना बढ़ा देता है और लम्बे मार्ग को छोटा कर देता है। उन्हें ऐसी किसी चीज़ से सन्तोष नहीं होता जो चरम आनन्द की पराकाष्ठा से, ऊँचे-से-ऊँचे शिखरों से, अत्यधिक उदात्त लक्ष्य से या अत्यन्त विशाल दृश्यावलियों से कम हो। इसीलिए भगवान् की विजयी शक्ति उनके साथ रहती है और उनकी अग्नि और आवेग और द्रुत गति की कृपा से भविष्य की जगह वर्तमान में ही परम सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १९-२०

महाकाली तथा काली

चण्डी-पाठ में महाकाली का जिस तरह वर्णन किया गया है और उनके श्यामा रूप के बीच क्या भेद है?

ये—काली, श्यामा इत्यादि—प्राण द्वारा देखे गये सामान्य रूप हैं, महाकाली का सच्चा रूप, जिसका उद्गम अधिमानस है, वे काली, श्यामा या भयंकरी नहीं हैं, बल्कि स्वर्णवर्णा तथा सर्वसुन्दरी हैं, वे असुर के सम्मुख अत्यन्त विकराल होने पर भी सौन्दर्य से भरपूर हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६८

पार्थिव वातावरण में निस्सन्देह एक काली है जो पार्थिव वस्तुओं के साथ व्यवहार करती है और जो एक हद तक, हम स्वतन्त्र नहीं कह सकते, फिर भी महाकाली की ठीक अभिव्यक्ति नहीं है; परन्तु वह उन (महाकाली) की पूर्ण अनुगत है और उसमें उनके प्रधान गुण विद्यमान हैं। उन गुणों की शक्ति और प्रभावशालिता तो क्षीण हो गयी हैं पर वे वहाँ हैं, तथा महाकाली की प्रकृति का सौन्दर्य भी वहाँ है। सम्भवतः तुम लोगों में से कुछ लोग

उन महाकाली के साथ सम्बन्ध रखते हो। वे स्वयं प्रतिशोध नहीं लेतीं, वे कभी उन लोगों को हानि नहीं पहुँचातीं जो उनकी भक्ति करते हैं, न वे उन देशों को महामारियों के द्वारा आक्रान्त ही करती है जो उनके प्रति पर्याप्त आदर और सम्मान नहीं दिखलाते। परन्तु वे हिंसा पसन्द करती हैं, वे युद्ध पसन्द करती हैं तथा उनका न्याय कुचलने वाला होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४७७-७८

महाकाली के प्रहार की प्रकृति कैसी होती है?

वह तुम्हें बहुत प्रसन्न बनाता है, वह तुम्हें हृदय में मधुर ऊष्मा प्रदान करता है। तुम पूरी तरह सन्तुष्ट अनुभव करते हो।

हमें उसके लिए अभीप्सा करनी होती है या वह अपने-आप आता है?

हाँ, तुम्हारी अभीप्सा में सच्चाई होनी चाहिये, तुम्हारे अन्दर सचमुच प्रगति की चाह होनी चाहिये। तुम्हें सचमुच कहना चाहिये: "जी हाँ, मैं प्रगति करना चाहता हूँ," सच्चाई के साथ कहना चाहिये...। "चाहे जो भी हो, मैं प्रगति करना चाहता हूँ।" तब वह आता है।

लेकिन जैसा कि मैंने कहा, वह प्रचुरता की शक्ति के साथ आता है जिसमें तीव्र आनन्द होता है। जब तुम एक निश्चय कर लो, अपने अन्दर किसी चीज़ को रोकने का निर्णय करो, जिस मूर्खता को एक बार कर चुके हो उसे न दोहराने का निश्चय कर लो, या कोई ऐसी चीज़ करना चाहो जो असम्भव लगती है या जिसे करना कठिन मालूम होता है, लेकिन जिसके बारे में तुम्हें पता है कि उसे करना ही चाहिये, जब तुमने निश्चय कर लिया और अपने संकल्प की पूरी सच्चाई उसमें लगा दी, तब अगर कोई ज़ोरदार प्रहार आये और तुम्हें वह करने के लिए बाधित करे जिसे करने का तुमने निश्चय किया है, तो वह प्रहार तो होता है पर ऐसा जिससे तुम्हें लगता है कि तुम महिमान्वित हो रहे हो, तुम बहुत ख़ुश होते हो, यह बहुत बढ़िया है, है न, तुम यहाँ (हृदय की ओर इशारा), कोई बहुत अद्‌भुत चीज़ अनुभव करते हो।

दोनों अवस्थाओं में बहुत भेद है। एक वह अनर्थ है जो इसलिए होता है क्योंकि तुम शुद्ध रूप से बाहरी, यान्त्रिक, भौतिक चेतना और अज्ञान की स्थिति में रहते हो, जो तुमसे सभी सम्भव मूर्खताएँ करवाती है, जो स्वभावतः, अनिवार्य रूप से, अपने परिणाम लेकर आती हैं। इस स्थिति और एकदम उच्च स्थिति में बहुत भेद है, उस स्थिति में जिसमें तुम निश्चय कर लेते हो कि तुम अपने ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करोगे, किसी भी क़ीमत पर केवल 'सत्य'-चेतना में ही रहोगे, चाहे प्रगति का कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, तुम प्रगति करोगे...। उस समय तुम्हारे साथ जो-जो होता है वह सार्थक होता है। तुम उनके अन्दर चमकते हुए सत्य को, मशाल की तरह तुम्हारे मार्ग को आलोकित करने वाले प्रकाश को, यहाँ पथ-प्रदर्शन करते हुए देखते हो... बहुत स्पष्ट देखते हो! अब यह तुम्हारी पीठ पर गिरने वाले पत्थर की तरह नहीं है जो तुम्हें कुचल डालता है। यह अभिभूत करने वाली एक दीप्ति है।

इसीलिए हमेशा कहा जाता है: "केवल पहले क़दम में ही प्रयास की ज़रूरत होती है। पहले क़दम का अर्थ है: उस स्तर में से निकल आओ और इधर, इस पर चढ़ो। उसके बाद हर चीज़, हर चीज़ बदल जाती है।

लेकिन तुम्हें पूरी तरह उस स्तर से उठ आना चाहिये, तुम्हें वहीं नहीं बने रहना चाहिये। तुम्हें एक क़दम यहाँ और एक वहाँ न रखना चाहिये, इससे काम न चलेगा।

तो बस, मेरे बच्चो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३६८-६९

अपने विचारों के साथ अपने विचारों को दे दो।
अपने हृदय के साथ अपनी भावनाओं को दे दो।
अपने शरीर के साथ अपने कर्म को दे दो।

–श्रीमाँ

महालक्ष्मी

सौन्दर्य तथा सामञ्जस्य की माँ

केवल प्रज्ञा और शक्ति ही भगवती माँ के व्यक्त रूप नहीं हैं। उनकी प्रकृति का एक और सूक्ष्म रहस्य है जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण रहती हैं, और पूर्णता भी पूर्ण नहीं हो सकती। ज्ञान और शक्ति के ऊपर

शाश्वत सौन्दर्य का चमत्कार, दिव्य सामञ्जस्यों का अगम रहस्य है, अति सम्मोहक विश्वव्यापी मनोहरता और आकर्षण का जादू है जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक जगह बाँधे रखता है और उन्हें मिलने और एक होने के लिए बाधित करता है ताकि छिपा हुआ आनन्द परदे के पीछे से अपना साज़ बजा सके और उन्हें अपना ताल-छन्द और अपनी टेक बना सके। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी सत्ताओं के लिए दिव्य शक्ति का और कोई रूप इससे अधिक आकर्षक नहीं होता। पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता को महेश्वरी इतनी अधिक शान्त, महान् और दूर लग सकती हैं कि वह उनके पास नहीं जा सकती और न उन्हें अपने अन्दर समा सकती है। उसकी निर्बलता को महाकाली इतनी अधिक तेज़ और भयानक लग सकती हैं कि वह उन्हें सह भी न सके, परन्तु महालक्ष्मी की ओर सभी बड़े उल्लास और उत्कण्ठा के साथ मुड़ते हैं क्योंकि वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अन्दर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना। महालक्ष्मी से मनोहरता, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्य से प्रकाश। वे जहाँ कहीं अपनी अद्‌भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस पर अपने स्मित की मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बक की तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं वहाँ-वहाँ सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएँ बहने लगती हैं।

फिर भी उनकी मोहिनी शक्ति की माँग को पूरा करना या उनकी उपस्थिति को बनाये रखना आसान नहीं है। मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की माँग। जहाँ सृष्टि के गूढ़, रहस्यमय आनन्द के साथ समस्वरता होती है, जहाँ 'सर्व सुन्दर' के आह्वान का उत्तर मिलता है और भगवान् की ओर उन्मुख बहुत-से

व्यक्तियों की मैत्री, एकता और प्रसन्न जीवन-प्रवाह होते हैं, महालक्ष्मी उसी वातावरण में निवास करना स्वीकार करती हैं। जो कुछ कुरूप, क्षुद्र, तुच्छ है, जो दीन, मलिन और कुत्सित है, जो कुछ उजड्ड और असंस्कृत है वह उनके आगमन को रोकता है। जहाँ प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहाँ वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं और जहाँ वे घटिया चीज़ों के साथ मिले रहते हैं या उनके कारण भद्दे बन जाते हैं वहाँ से महालक्ष्मी तुरन्त मुँह मोड़ लेती हैं या वहाँ अपना ऐश्वर्य उँडेलने की परवाह नहीं करतीं। अगर वे मनुष्यों के हृदयों में अपने-आपको स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया और कलह से घिरा हुआ पाती हैं, जब पवित्र पात्र में विश्वासघात, लोभ, कृतघ्नता मिले रहते हैं, यदि वासना की ग्राम्यता और असंस्कृत या अपरिष्कृत कामना भक्ति को भ्रष्ट कर देती हैं तो ऐसे हृदयों में ये सुन्दर करुणामयी देवी क्षण-भर के लिए भी नहीं ठहरतीं, ऐसी अवस्था में वे दिव्य जुगुप्सा से भर जाती हैं और पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं कि आग्रह या संघर्ष करें। या फिर वे अपना मुँह ढक कर इस कड़वे और विषैले आसुरी तत्त्व के बाहर फेंके जाने की प्रतीक्षा करती हैं ताकि वे अपने आह्लादपूर्ण प्रभाव को फिर से स्थापित कर सकें। उन्हें तपस्वी की शुष्कता और कठोरता पसन्द नहीं है और न हृदय के गभीर भावावेगों का दमन या आत्मा और जीवन के सुन्दर भागों का निग्रह ही पसन्द है, क्योंकि वे प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जूआ रखती हैं। उनकी परम सृष्टि में जीवन स्वर्गीय कला की एक समृद्ध कृति बन जाता है और सारा अस्तित्व एक पवित्र आनन्द का काव्य। संसार की सारी समृद्धि, सम्पदा एकत्रित करके परम व्यवस्था के लिए इकट्ठी की जाती है। उनके ऐक्य सम्बन्धी सहज ज्ञान और उनकी आत्मा के उच्छ्वास से सादी-से-सादी और मामूली-से-मामूली चीज़ें भी अद्‌भुत बन जाती हैं। हृदय में प्रवेश पा जाएँ तो वे प्रज्ञा को आश्चर्य के ऊँचे-से-ऊँचे शिखर पर पहुँचा देती हैं और उसके आगे समस्त ज्ञान से परे आनन्द-समाधि के गुप्त रहस्य खोल देती हैं। वे भक्ति को भगवान् के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ जोड़ देती हैं, बल और शक्ति को ऐसा छन्द सिखाती हैं जिससे उनके कर्म समस्वर और सप्रमाण हो जायें। वे पूर्णता पर एक ऐसी मोहिनी छा देती हैं जिससे वह चिरस्थायी हो जाये। CWSA खण्ड ३२, पृ. २०-२२

"अन्तःकरण और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, प्रत्येक बाह्य कर्म और गतिविधि में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और जीवन के चतुःपार्श्व का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यह है महालक्ष्मी को प्रसन्न करने का अनुष्ठान।... जहाँ प्रेम नहीं, सौन्दर्य नहीं और इनके होने की गुंजायश भी नहीं, वहाँ वे नहीं आया करतीं।"

(श्रीअरविन्द, 'माता' पुस्तक से, पृ. ३१)

जब पारिपार्श्विक अवस्थाएँ, परिस्थितियाँ, वातावरण, जीवन की पद्धति और सर्वोपरि, आन्तरिक मनोभाव—ये सब सम्पूर्णतः निम्न कोटि के, अमार्जित, कुत्सित, अहंकारपूर्ण, मलिन होते हैं तो प्रेम आने में अनिच्छुक होता है, अर्थात्, वह सदा अभिव्यक्त होने से हिचकिचाता है और सामान्यतया देर तक नहीं ठहरता। 'सौन्दर्य' को ठहराने के लिए सौन्दर्यपूर्ण आवास प्रदान करना चाहिये। मैं यहाँ बाह्य वस्तुओं की—मकान, साज-सामान आदि की —चर्चा नहीं कर रही हूँ, मैं आन्तरिक मनोभाव की, किसी ऐसी आन्तरिक वस्तु की बात कर रही हूँ जो सुन्दर, उदात्त, सुसमञ्जस, निःस्वार्थ हो। वहाँ प्रेम के आने और ठहरने की सम्भावना है। परन्तु जब, जैसे ही वह व्यक्त होने की कोशिश करता है, वह तुरत इतनी नीच और कुरूप वस्तुओं के साथ मिश्रित हो जाता है कि वह नहीं ठहरता, वह चला जाता है। बस, यही बात यहाँ श्रीअरविन्द कहते हैं : वह "उत्पन्न होने में अनिच्छुक" होता है—यह कहा जा सकता है कि वह तुरत पश्चात्ताप करता है कि पैदा ही क्यों हुआ। मनुष्य सदा ही यह शिकायत करते हैं कि प्रेम उनके साथ बना नहीं रहता, परन्तु यह पूरा-पूरा उनका दोष है। वे इस प्रेम को एक ऐसा गन्दा जीवन प्रदान करते हैं जो बीभत्स चीज़ों के एक स्तूप के साथ और इतनी अमार्जित वस्तुओं के साथ, इतनी नीच, इतनी स्वार्थपूर्ण, इतनी गन्दी चीज़ों के साथ मिला-जुला होता है कि वह बेचारा ठहर नहीं पाता। यदि वे इसे पूरी तरह मार डालने में सफल नहीं होते तो वे इसे बुरी तरह बीमार बना देते हैं। अतएव, एकमात्र चीज़ जो वह कर सकता है वह है भाग खड़े होना। लोग हमेशा यह शिकायत करते हैं कि प्रेम अस्थायी और क्षणभंगुर होता है। सच बात तो यह है कि उन लोगों को बहुत कृतज्ञ होना

चाहिये कि उनके दिये हुए मकान की गन्दगी के बावजूद उनके अन्दर वह व्यक्त हुआ था।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४८३-८४

आन्तरिक और बाहरी दरिद्रता

महालक्ष्मी के विषय में श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं : "वे सब चीज़ें जो दीन-हीन होती हैं... उनके आगमन को रोकती हैं"?

हाँ, वह सब जो दरिद्र है, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आन्तरिक समृद्धि से शून्य; जो कुछ सूखा, ठण्डा, गुड़मुड़ हुआ होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहाँ प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यन्त धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र आदमी बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो।

जब हम "एक दरिद्र मनुष्य" कहते हैं तब "दरिद्र मनुष्य" का ठीक-ठीक अर्थ क्या होता है?

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य, कोई उदार-भाव न हो। वह एक दुःखी, अभागा मनुष्य भी होता है। परन्तु कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता —यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही केन्द्रित होते हैं और जो सर्वदा अपनी ओर ही वस्तुओं को खींचना चाहते हैं, जो चीज़ों को और जगत् को अपने ही नज़रिये से देखते हैं—केवल ये ही लोग दुःखी होते हैं। परन्तु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाये बिना, दे देता है तो वह कभी दुःखी नहीं होता—कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है बस वही दुःखी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४८५-८६

भागवत विरक्ति

मधुर माँ, "भागवत विरक्ति" क्या है?

ओह, मेरे बच्चे! *(मौन)* यह ऐसी विरक्ति है जो असीम करुणा से भरपूर है। यह ऐसी चीज़ है जो ख़राब स्पन्दनों को अपने ऊपर ले लेती है ताकि दूसरे उससे मुक्त हो जायें। परिणाम... *(मौन)* ग़लत और निम्न गतिविधि के परिणाम को—क्रूर न्याय के साथ भूल करने वाले पर फेंकने की जगह, यह उसे आत्मसात् कर लेती है ताकि उसे अपने अन्दर परिवर्तित कर सके, और की गयी भूल के भौतिक परिणामों को यथासम्भव कम कर दे। मेरा ख़याल है कि भगवान् शिव की वह पुरानी कहानी इस भागवत विरक्ति को अभिव्यक्त करने का कल्पनात्मक तरीक़ा है, जिसमें उनके गले पर एक काला दाग़ पड़ गया था क्योंकि उन्होंने जगत् में जो कुछ अशुभ था उसे निगल लिया था! इससे उनके गले पर काला दाग़ पड़ गया।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२५-२६

मधुर माँ, मैं यह नहीं समझ पाया: "यह महालक्ष्मी की शक्ति है, और शरीरधारी सत्ताओं के हृदय के लिए 'भागवत शक्ति' का और कोई रूप इतना आकर्षक नहीं है।"

इसका मतलब है मनुष्य। धरती पर मानव-सत्ताएँ, धरती पर रहने वाली सत्ताएँ—इसे कहने का यह एक और तरीक़ा है। और यह भी है... इसका मतलब पशुओं से भी है। वे पशुओं के प्रति बहुत-बहुत स्नेहपूर्ण हैं और पशुओं को भी वे बहुत प्रिय हैं; बहुत उग्र पशु भी उनके सामने मृदु बन जाते हैं, और इसी कारण "मनुष्य" शब्द रखने की जगह, उन्होंने "शरीरधारी सत्ताओं" रखा है, ऐसी सत्ताएँ जो सशरीर धरती पर हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२१

महासरस्वती

पूर्णता की माँ

महासरस्वती माता की कर्मशक्ति और उनकी पूर्णता और सुव्यवस्था की आत्मा हैं। वे चारों में सबसे छोटी हैं, लेकिन कार्य-सञ्चालन की क्षमता में सबसे अधिक निष्णात हैं। वे भौतिक प्रकृति के सबसे अधिक निकट

हैं। महेश्वरी जगत् की शक्तियों की विशाल रूप-रेखा तैयार करती हैं, महाकाली उनकी शक्ति और वेग को सञ्चालित करती हैं, महालक्ष्मी उनके ताल और लय को प्रकट करती हैं, किन्तु महासरस्वती उनके संगठन और कार्य-सञ्चालन के ब्योरे, विवरण, विभिन्न भागों के पारस्परिक सम्बन्ध और बलों के सफल संयोजन और परिणाम तथा परिपूर्ति की अचूक यथार्थता की अधिष्ठात्री हैं। चीज़ों के बारे में ज्ञान, कला-कौशल और कारीगरी महासरस्वती का अपना क्षेत्र है। उनकी प्रकृति में हैं पूर्ण कार्यकर्ता का अन्तरंग और यथार्थ ज्ञान, सूक्ष्मता और धैर्य, सहज ज्ञानवाला मन, सचेतन हाथ और पारखी दृष्टि, और वे अपने चुने हुए लोगों को ये चीज़ें दे सकती हैं। यह शक्ति बलवान्, अथक, सावधान और निपुण शिल्पी, संगठन-कर्ता, शासक, कारीगर और लोकों का वर्गीकरण करने वाली है। जब वे प्रकृति के रूपान्तर और नव-निर्माण का काम हाथ में लेती हैं तो उनका काम श्रमपूर्ण और सूक्ष्म होता है और हमारे अधीर स्वभाव को बहुधा धीमा और बहुत अधिक लम्बा खिंचता हुआ लगता है, लेकिन वह स्थायी, पूर्ण और निर्दोष होता है। क्योंकि उनके काम का संकल्प अतिसतर्क, तन्द्राहीन और अश्रान्त होता है। वे हमारे ऊपर झुक कर हर छोटे-से-छोटे ब्योरे को देखती हैं और छूती हैं, हर छोटे-से-छोटे दोष, दरार, मरोड़ या अपूर्णता को खोज लेती हैं और जो हो चुका है और जो करना बाक़ी है उन दोनों के बारे में विचार करके ठीक-ठीक मूल्यांकन करती हैं। उनकी दृष्टि के लिए कोई चीज़ अतितुच्छ या प्रत्यक्ष रूप में नगण्य नहीं है। कोई भी स्पर्शातीत, छद्मवेशी, या छिपी हुई चीज़ उनसे बच नहीं सकती। वे हर एक भाग को बार-बार साँचे में ढालती हैं और तब तक मेहनत करती रहती हैं जब तक वह अपने उचित रूप और सम्पूर्ण में अपने स्थान को पा न ले, और अपने नियत प्रयोजन को सिद्ध न कर ले। लगातार मेहनत के साथ चीज़ों को व्यवस्थित और पुनर्व्यवस्थित करते हुए वे सभी प्रयोजनों और उन्हें पूरा करने के तरीक़ों पर एक साथ नज़र रखती हैं और उनका सहज ज्ञान जानता है कि किसे चुनना और किसे छोड़ना चाहिये और वे सफलता के साथ उचित यन्त्र, उचित समय, उचित परिस्थितियों और उचित प्रक्रिया को चुनती हैं। वे असावधानी, उपेक्षा और अकर्मण्यता से घृणा करती हैं। लापरवाही, टाल-मटोल के साथ, बेगार टालना या जल्दबाज़ी

में किया गया काम, फूहड़पन या 'चल जायेगा' की वृत्ति और एक की जगह कुछ दूसरा ही कर बैठना, साधन और शक्ति का मिथ्या आयोजन और दुरुपयोग, काम न करना या अधूरा छोड़ देना उनके स्वभाव के लिए अप्रीतिकर और विजातीय है। जब उनका काम पूरा होता है तो कहीं कोई भूल नहीं रहती, काम का कोई भाग ग़लत जगह पर, छूटा हुआ या दोषपूर्ण अवस्था में नहीं रहता, सब कुछ ठोस, यथार्थ, पूर्ण और प्रशंसनीय होता है। उन्हें पूर्ण पूर्णता से कम पर सन्तोष नहीं होता और अगर उन्हें सृष्टि की पूर्णता के लिए अनन्त काल तक परिश्रम करने की ज़रूरत हो तो वे उसके लिए भी तैयार रहती हैं। इसलिए माता की सभी शक्तियों में वे ही मनुष्य और उसकी हज़ारों अपूर्णताओं के साथ सबसे अधिक धीरज के साथ लगी रहती हैं। अगर हम अपने संकल्प पर एकमन हों, निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहें तो उन कृपालु, सदा मुस्कुराने वाली, साथ रह कर सहायता करने वाली, आसानी से मुँह न मोड़ने वाली, अनुत्साहित न होने वाली, बार-बार असफल होने पर भी लगी रहने वाली माता के हाथ हमें पग-पग पर सहारा देते हैं। वे दुविधा-भरे मन को नहीं सहतीं, ढोंग, पाखण्ड, आत्मवञ्चना और बहानेबाज़ी के प्रति उनका मर्मभेदी व्यंग्य निर्मम होता है। आवश्यकता के समय वे हमारी माँ हैं, कठिनाइयों के समय मित्र हैं, स्थिर और शान्त रूप से सलाहकार और परामर्शदाता हैं। वे अपनी ज्योतिर्मयी मुस्कान से हमारी उदासी, हमारे उद्वेग और अवसाद के बादलों को तितर-बितर कर देती हैं। वे हमेशा याद दिलाती रहती हैं कि उनकी सहायता हमारे साथ है। वे शाश्वत सूर्य के प्रकाश की ओर इशारा करती हैं और दृढ़ता, निश्चलता और धैर्यपूर्वक हमें गभीर तथा उच्चतर प्रकृति की ओर सतत प्रेरित करती रहती हैं। माता की अन्य शक्तियों के सभी कार्य अपनी पूर्णता के लिए उनका सहारा लेते हैं क्योंकि वे ही भौतिक आधार को सुनिश्चित बनाती हैं, ब्योरे की सामग्री की व्यवस्था करती हैं, निर्माण के ढाँचे को खड़ा करके उसमें कीलें जड़ कर उसे मज़बूत बनाती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २२-२४

पूर्णता तथा सुव्यवस्था की प्राणशक्ति

"महासरस्वती माता की 'कर्म-शक्ति' और सिद्धि तथा सुव्यवस्था में उनकी प्राणशक्ति हैं। शक्ति-चतुष्टय में सबसे कनिष्ठा और कर्म-सम्पादन में सबसे निपुण तथा स्थूल प्रकृति के लिए सबसे समीप हैं।... सिद्ध कर्मी का अन्तरंग और यथावत् ज्ञान, सूक्ष्म बोध और धैर्य, अन्तर्ज्ञानी मन और सचेत हाथ और यथावत् गुण-दोषदर्शी दृष्टि की प्रमादरहित सुनिश्चितता, सिद्ध कर्मी के ये सब लक्षण महासरस्वती की प्रकृति में सदा ही अवस्थित रहते हैं और जिन पर वे अनुग्रह करती हैं उन्हें वे यह सारी सम्पदा प्रदान कर सकती हैं।"

अभिव्यक्ति के क्रम में वे अन्तिम थीं। और अपनी विशिष्ट प्रकृति में, अपने स्पन्दन के गुण में, वे बहुत समीप... एक नन्हें से बच्चे तक के समीप। वे नवयुवकों को, बच्चों को, बनती हुई वस्तुओं को, जिनके सामने रूपान्तरित होने और पूर्ण बनने के लिए एक लम्बा पथ पड़ा हुआ है, उनको वे चाहती हैं। वे छोटे-छोटे बच्चों की क्रियावलियों को पसन्द करती हैं। वे स्वरूप में सबसे छोटी और अभिव्यक्ति में सबसे अन्तिम हैं।

श्रीअरविन्द यहाँ "सचेत हाथ" की बात कहते हैं, उसका तात्पर्य क्या है?

क्या! न मालूम कितनी बार मैंने यह बात तुम लोगों से कही है, मैंने सैकड़ों बार यह बात तुम्हें समझायी है और तुम फिर भी यह प्रश्न पूछते हो? मैंने तुमसे कहा है कि तुम चाहे जो भी कार्य करना चाहो, पहली बात है अपने हाथ के कोशाणुओं में चेतना भर देना। यदि तुम खेलना चाहते हो, यदि तुम काम करना चाहते हो, यदि तुम कोई भी चीज़ अपने हाथ से करना चाहते हो तो जब तक तुम अपने हाथ के कोशाणुओं में चेतना नहीं भर देते, तुम कभी कोई अच्छी चीज़ नहीं कर सकोगे—कितनी बार मैंने यह तुमसे कहा है? और यह अनुभूत होता है। तुम इसे अनुभव करते हो। तुम इसे आयत्त कर सकते हो। हाथ को सचेतन बनाने के लिए सभी प्रकार के अभ्यास किये जा सकते हैं और फिर एक क्षण ऐसा आता है जब वह इतना सचेतन बन जाता है कि तुम इसे कार्य सम्पन्न करने के लिए छोड़

सकते हो; यह उन्हें स्वयं अपने-आप, तुम्हारे नन्हें मन के हस्तक्षेप किये बिना, सम्पन्न करता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४८४-८५

"अपनी पूर्णता के लिए अन्य 'शक्तियों' का सारा काम उन पर (महासरस्वती पर) निर्भर करता है...।"

महासरस्वती पर। हाँ, क्योंकि वे... *(मौन)* वस्तुतः पूर्णता की देवी हैं। उनके लिए हर एक चीज़ ब्योरे में की जानी चाहिये, और बिलकुल पूर्णता के साथ। और वे चाहती हैं, इस बात पर ज़ोर देती हैं कि वह चीज़ भौतिक रूप से, पूर्ण रूप से और पार्थिव रूप से की जाये। वे नहीं चाहतीं कि चीज़ मानसिक या प्राणिक क्रिया की तरह हवा में ही रह जाये, बल्कि वह अपने सभी ब्योरों में भौतिक सिद्धि हो, और हर एक ब्योरा पूर्ण हो, किसी की भी उपेक्षा न हो। इसलिए, दूसरे क्षेत्रों में अन्य (देवियाँ) जो काम शुरू करती हैं उसे वे मूर्त रूप देती हैं और उसे उसकी भौतिक पूर्णता की ओर ले जाती हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२२

मधुर माँ, महासरस्वती चारों में सबसे छोटी क्यों हैं?

क्योंकि उनका काम सबसे अन्त में आया; इसलिए वे भी बिलकुल अन्त में आयीं। *(मौन)* वे इसी क्रम में अभिव्यक्त हुई हैं, यहाँ जो क्रम दिया गया है उसके अनुसार। ये रूप भगवती माँ की विशेषताओं के जैसे हैं जो काम की आवश्यकताओं के अनुसार एक के बाद एक अभिव्यक्त हुए; और पूर्णता की आवश्यकता अन्त में थी, इसलिए वे सबसे छोटी हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३२९

आनन्दमयी माँ

परम भागवत प्रेम तथा आनन्द

"भगवती माता के और भी महान् 'व्यक्तित्व' हैं, लेकिन उन्हें इस धरती पर उतारना ज़्यादा कठिन था और वे धरती की चेतना के विकास में प्रधान रूप से आगे नहीं आये। उनमें से कुछ ऐसी 'उपस्थितियाँ' भी हैं जो अतिमानसिक सिद्धि के लिए अनिवार्य हैं —विशेषकर, यह गुह्य और बलशाली उल्लास तथा 'आनन्द' का स्वरूप जो परम भागवत 'प्रेम' से प्रवाहित होता है। वह 'आनन्द' ही अतिमानसिक आत्मा के सबसे ऊँचे शिखरों का नाता 'जड़-तत्त्व' की गहरी-से-गहरी खाइयों के साथ जोड़ सकता है। उसी 'आनन्द' के पास आश्चर्यजनक, परम दिव्य 'जीवन' की चाबी है और अब भी वह अपने गुप्त स्थानों में रहता हुआ विश्व की अन्य 'शक्तियों' के काम को सहारा देता है।"

मधुर माँ, यह 'व्यक्तित्व' कौन-सा है और वह कब अभिव्यक्त होगा?

तुमने पूछा है : "यह 'व्यक्तित्व' कौन-सा है और वह कब अभिव्यक्त होगा?" *(मौन)* और मैं यह उत्तर देती हूँ :

"वह व्यक्तित्व या वह सत्ता अपने साथ धरती के लिए अभी तक अपरिचित शक्ति और प्रेम की महिमा और भागवत 'आनन्द' की तीव्रता को लिये आ चुकी है।

इससे भौतिक वातावरण बिलकुल बदल गया था, वह नयी और अद्‌भुत सम्भावनाओं से सराबोर था।

लेकिन यहाँ, इहलोक में, स्थायी और क्रियाशील होने के लिए यह ज़रूरी था कि उसे कुछ थोड़ी-सी ग्रहणशीलता तो मिले, कम-से-कम एक मनुष्य तो मिले जिसके प्राण और शरीर में अपेक्षित गुण हों, जो एक तरह से परम पावन हो, जिसमें सहज और सर्वांगीण पवित्रता हो, साथ ही जिसका शरीर बिना टूटे, इसके साथ आने वाले 'आनन्द' को सह सकने के लिए काफ़ी सशक्त और सन्तुलित हो।

अभी तक उसे वह चीज़ नहीं मिली जो आवश्यक थी। मनुष्य दुराग्रह के साथ मनुष्य ही बने रहते हैं। वे अतिमानव नहीं बनना चाहते या नहीं

बन पाते। वे केवल अपनी अञ्जलि के अनुसार ही प्रेम को ग्रहण और अभिव्यक्त कर सकते हैं—मानवीय प्रेम! और दिव्य 'आनन्द' का अद्‌भुत हर्ष उनकी पकड़ में नहीं आता।

कभी-कभी यह देख कर कि जगत् उसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है, वह लौट जाने की सोचती है। यह एक निष्ठुर क्षति होगी। यह सच है कि अभी तो उसकी उपस्थिति सक्रिय न होकर नाम के लिए ही है, क्योंकि उसे अभिव्यक्त होने का अवसर ही नहीं मिला। लेकिन फिर भी, वह काम के लिए एक सबल सहायता है। क्योंकि, भगवती माँ के सभी रूपों में से इसी में शारीरिक रूपान्तर के लिए सबसे अधिक सामर्थ्य है। वास्तव में, जो कोषाणु भागवत आनन्द के सम्पर्क से स्पन्दित हो सकते हैं, जो उसे ग्रहण कर सकते और बनाये रख सकते हैं, वे पुनरुज्जीवित कोषाणु हैं जो अमर बनने के मार्ग पर हैं। लेकिन भागवत आनन्द और भोग-विलास के स्पन्दन एक ही प्राणमय और भौतिक शरीर में नहीं रह सकते। अतः, 'आनन्द' को ग्रहण कर सकने की अवस्था में होने के लिए हर प्रकार के सुख-आराम में डूबे रहना पूरी तरह त्याग देना चाहिये। लेकिन ऐसे लोग विरले ही हैं जो सक्रिय जीवन में भाग लेना छोड़े बिना, घोर तपश्चर्या में डूबे बिना, सुख-आराम को त्याग सकते हैं। और जो लोग यह जानते हैं कि सक्रिय जीवन में ही रूपान्तर सिद्ध होगा उनमें से कुछ सुख को 'आनन्द' का लगभग भ्रष्ट रूप मानते हैं और इस तरह अपनी निजी तुष्टि की चाह को न्यायसंगत ठहराते हैं और अपने रूपान्तर के मार्ग में ऐसी रुकावट खड़ी कर देते हैं जिसे पार करना लगभग असम्भव है।"

लेकिन, माताजी, वह इसलिए उतरी क्योंकि उसने कोई सम्भावना देखी होगी!

क्या?

वह उतरी क्योंकि एक सम्भावना थी; क्योंकि चीज़ें अमुक हद तक आ गयी थीं, और उसके अवतरण की घड़ी आ गयी थी।

वास्तव में वह उतरी थी, क्योंकि मैंने सोचा था कि यह सम्भव था... कि वह सफल हो सकती है। *(मौन)* सम्भावनाएँ हमेशा रहती हैं, केवल उन्हें भौतिक रूप लेना चाहिये। है न, मैंने तुमसे जो कहा उसका प्रमाण

यह है कि वह एक निश्चित क्षण पर आयी, और... दो-तीन सप्ताह में, केवल आश्रम का ही नहीं, बल्कि धरती का वातावरण इतनी शक्ति, इतने तीव्र भागवत 'आनन्द' से भर गया, जो इतनी अद्‌भुत शक्ति पैदा करता है कि पहले जिन चीज़ों को पूरा करना इतना कठिन था, वे लगभग तुरन्त पूरी हो सकती थीं! सम्पूर्ण जगत् पर इसका प्रभाव पड़ा। मुझे नहीं लगता कि तुममें से एक भी ऐसा है जो इससे अवगत हो। तुम मुझे यह भी नहीं बता सकोगे कि यह हुआ कब, बता सकोगे?

कब हुआ? (हँसी)

मुझे तारीख़ नहीं मालूम। मुझे नहीं मालूम। मुझे तारीख़ें याद नहीं रहतीं। मैं लगभग बता सकती हूँ, इस तरह...। *(मौन)* अगर मैं अपने काग़ज़ देखूँ, तो हो सकता है कि मुझे तारीख़ें मिल जायें। लेकिन मैं तारीख़ें नहीं जानती। यह मेरे लिए ऐसी चीज़ है जो...। मैं केवल इतना जानती हूँ कि यह श्रीअरविन्द के शरीर-त्याग से पहले हुआ था, उन्हें पहले से ही सूचना मिल गयी थी, उन्होंने इस तथ्य को पहचाना था...!

निश्चेतना के साथ घोर संघर्ष था; क्योंकि, जब मैंने देखा कि ग्रहणशीलता वैसी नहीं थी जैसी होनी चाहिये तो मैंने निश्चेतना को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया और वहीं लड़ाई करने की कोशिश की। मैं यह नहीं कहती कि उसके कोई परिणाम नहीं आये, लेकिन प्राप्त परिणाम और अपेक्षित परिणाम में बहुत अन्तर था।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३३१-३४

तापसिक अनुशासन तथा भोग-विलास का त्याग

क्या तापसिक अनुशासन हमें आसक्ति को पार करने में सहायता नहीं देता?

नहीं, वह तुम्हारे मिथ्याभिमान को फुला कर और मज़बूत बना देता है!

लेकिन आपने कहा: "सुख का त्याग करो।" तब...

सुख का त्याग करना... लेकिन तापसिक अनुशासन द्वारा सुख का त्याग नहीं किया जाता! वह किया जाता है आन्तरिक ज्योति के प्रज्वलन के द्वारा और सत्ता के एक प्रकार के उदात्तीकरण के द्वारा, जिससे तुम्हें यह अनुभव

होता है कि सुख में जो कुछ है वह स्थूल, अन्धकारपूर्ण और अप्रिय है!

अगर हम स्थूल सुख में रहते हैं तो उसे पार कैसे करें?

लेकिन मुझे नहीं लगता कि तुम केवल स्थूल सुख में रहते हो; वरना, मेरा ख़याल है कि तुम यहाँ न होते!

लेकिन सब कुछ सुख ही तो है, है न? सुख, इसका अर्थ है... सुख। हम आराम से रहते हैं, हम खाते-पीते हैं इत्यादि। यह सब, यह सुख नहीं है?

(आश्चर्य से) तुम यह सब मौज-मज़े के लिए करते हो? *(हँसी)* शायद यह तुम्हारी धारणा है, मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना। अगर तुम उच्चतर जीवन के लिए अभीप्सा करने वाली और बिलकुल साधारण जीवन में आराम से रहने वाली चीज़ में भेद न कर सको तो मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकती। यह ज़रूरी है कि तुम पहले अपने अन्दर यह छानबीन कर लो।

लेकिन क्या बाहरी अनुशासन कुछ मदद नहीं करता?

अगर तुम अपने लिए एक अनुशासन ठीक करो और अगर वह बहुत मूर्खतापूर्ण न हो तो वह तुम्हारी मदद कर सकता है। अनुशासन, मैं तुमसे कहती हूँ—अनुशासन, तपस्याएँ और सभी प्रकार की तपस्यामयी साधनाएँ, जैसा कि आमतौर पर उनका अनुशीलन किया जाता है, तुम्हारे अन्दर मिथ्याभिमान पैदा करने के लिए सबसे अच्छे तरीक़े हैं, इतना भयंकर अभिमान पैदा करने के लिए कि तुम कभी, कभी नहीं बदल सकोगे। तुम्हें उसे हथौड़े से तोड़ना होगा!

पहली शर्त है सन्तुलित विनम्रता, जो तुम्हें इस बात के प्रति सचेतन कर दे कि जब तक भगवान् तुम्हारी देखभाल, तुम्हारा पोषण, तुम्हारी सहायता, प्रबोधन और पथ-प्रदर्शन नहीं करते तब तक तुम कुछ भी नहीं हो। तो ऐसा है। जब तुम यह अनुभव कर लो, केवल दिमाग़ से ही नहीं समझो, बल्कि अपने शरीर तक से अनुभव कर लो, तब तुम बुद्धिमान् बनने लगते हो, उससे पहले नहीं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३४१-४३

राधा

मैं राधा और कृष्ण के बारे में कुछ सुन्दर कविताएँ सिखा रहा हूँ। राधा कितनी जीवन्त प्रतीत होती हैं। आधुनिक युग के विद्वानों का कहना है कि राधा कृष्ण-पन्थ के लिए बहुत हाल ही की हैं। क्या आप मुझे बता सकती हैं कि राधा का अस्तित्व था या नहीं?

निश्चित रूप से वे रह चुकी हैं और अब भी जी रही हैं।

प्यार और आशीर्वाद।

—श्रीमाँ

राधा-शक्ति

'चण्डी' पुस्तक में अन्य शक्तियों के साथ-साथ श्रीमाँ की चार विश्व-शक्तियों के नाम—महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती —तो वर्णित हैं पर 'राधा' का नाम नहीं दिया गया है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जब 'चण्डी' की रचना हुई थी तब ऋषियों की दृष्टि के सामने राधा-शक्ति नहीं प्रकाशित हुई थी और 'चण्डी' में केवल श्रीमाँ की विश्व-शक्तियों का ही वर्णन आया है, उनकी अतिमानसिक शक्तियों का वहाँ उल्लेख नहीं है। अपनी पुस्तक 'दि मदर' (The Mother) में श्रीमाँ की चार शक्तियों का वर्णन करने के बाद आपने कहा कि, "माँ भगवती के और भी कई महान् व्यक्तित्व हैं, पर उनका अवतरण कराना अधिक कठिन रहा और भू-पुरुष के क्रमविकास में वे उतनी स्पष्टता के साथ सामने आये भी नहीं हैं। उनमें अवश्य ही कुछ व्यक्तित्व ऐसे हैं जो विज्ञान-सिद्धि के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं—सबसे अधिक आवश्यक वह है जो माता के परम भागवत प्रेम से प्रवाहित होने वाले रहस्यमय परम उल्लासमय आनन्द की मूर्ति है, यह वह आनन्द है जो विज्ञान-चैतन्य के उच्चतम शिखर और जड़-प्रकृति के निम्नतर गह्वर के बीच का महान् अन्तर मिटा कर दोनों को मिला सकता है, अनुपम परम दिव्य जीवन की कुञ्जी इसी आनन्द के पल्ले है और अब भी यही आनन्द अपने गुप्त धाम से विश्व की अन्य सभी महाशक्तियों के कार्य का सहारा बना हुआ है।" इस उद्धरण में जिस मूर्ति की बात कही गयी है क्या वह 'राधा-शक्ति' नहीं है जिसे प्रेममयी राधा, महाप्राण-शक्ति और आह्लादिनी-शक्ति भी कहा गया है?

हाँ; परन्तु राधा-कृष्ण-लीला के प्रतीक प्राणमय जगत् से लिये गये हैं और इस कारण वहाँ जिस शक्ति का वर्णन किया गया है वह राधा-शक्ति केवल एक आन्तर प्रकाश है। यही कारण है कि उसे महाप्राण-शक्ति और आह्लादिनी-शक्ति कहा गया है। यहाँ (ऊपर उद्धरण में) जिस शक्ति की बात कही गयी है वह यह आन्तरिक रूप नहीं है बल्कि वह तो ऊपर के 'प्रेम' और 'आनन्द' की पूर्ण 'शक्ति' है। CWSA खण्ड ३२, पृ. ७२-७३

राधा की प्रार्थना[१]

प्रथम दृष्टि में ही जिसको पहचान गया अभ्यन्तर
अपना स्वामी, जीवन का सर्वस्व, हृदय का ईश्वर;
हे मेरे प्रभु, तू मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत कर!—

तेरे ही हैं मेरे निखिल विचार, भावना, चिन्तन,
मेरे उर-आवेग, हृदय-संकल्प, सकल संवेदन;
तेरे ही हैं मेरे जीवन के व्यापार प्रतिक्षण,
मेरे तन का एक-एक अणु, शोणित का प्रति कण-कण!

सर्व भाँति, सम्पूर्ण रूप से तेरी हूँ मैं निश्चय,
प्रिय, सर्वथा, अशेष रूप से तेरी ही निःसंशय;
तेरी इच्छा से परिचालित होगा मेरा जीवन,
केवल तेरी ही विधि का मैं, नाथ करूँगी पालन!

जीवन-मरण कि हर्ष-शोक भेजे तू या सुख-दुःख के क्षण,
तेरे वरदानों का नित्य करेगा उर अभिवादन;
दिव्य देन होगी तेरी प्रत्येक देन मेरे हित,
वह सदैव, प्रभु, परम 'हर्ष' की वाहक होगी निश्चित!

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६४७ **श्रीअरविन्द**

[१] माँ ने मूल रूप से यह कविता पहले अंग्रेज़ी में लिखी थी, फिर अगले दिन फ़्रेंच में इसका अनुवाद किया। बाद में श्रीअरविन्द ने फ़्रेंच का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। हम यहाँ श्री सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा किया गया उसका हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं—सं.

प्रतिमा तथा चित्र

देवताओं तथा देवियों के रूप

जहाँ तक देवताओं की बात है, मनुष्य उनके ऐसे रूप गढ़ देते हैं जिन्हें वे स्वीकार कर लेते हैं; लेकिन ये रूप भी मनुष्य के मन में उन्हीं स्तरों से प्रेरित होते हैं जिन स्तरों पर देव प्रतिष्ठित रहते हैं। समस्त सर्जन के दो पहलू हैं, साकार तथा निराकार; भगवान् भी आकारहीन होते हैं, और फिर भी उनका आकार होता है; लेकिन देवत्व विभिन्न आकार ले सकता है, यहाँ महेश्वरी, वहाँ पलास एथिनी। अपनी लघु अभिव्यक्तियों में स्वयं महेश्वरी के कई आकार अथवा रूप हैं—दुर्गा, उमा, पार्वती, चण्डी इत्यादि। देवता भी मनुष्यों के द्वारा दिये आकारों से सीमित नहीं रहते—मनुष्यों ने भी हमेशा उन्हें केवल मानव-रूपों में ही नहीं देखा है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६७

देवताओं तथा देवियों के चित्र

हम महासरस्वती के चित्र जो देखते हैं क्या वे सच्चे हैं?

हे भगवान्! *(हँसी)* जब एक बहुत छोटा-सा बच्चा किसी का चित्र बनाने की कोशिश करता है तो क्या वह उस व्यक्ति के जैसा होता है? लगभग ऐसी ही चीज़ है, कभी-कभी तो उससे भी बदतर! क्योंकि बच्चा भोला और सच्चा होता है; जब कि जो व्यक्ति देवताओं का चित्र आँकता है वह पूर्वाग्रहों या पूर्वकल्पित विचारों से, या औरों ने जो कहा है और शास्त्रों में जो लिखा है और लोगों ने जो देखा है उससे भरा होता है। अतः, वह इन सबसे बँधा रहता है। **कभी-कभी, समय-समय पर,** कुछ ऐसे कलाकार होते हैं जिनमें अन्तर्दृष्टि होती है, महान् अभीप्सा होती है, आत्मा और दर्शन की महान् पवित्रता होती है, जिन्होंने ऐसी चीज़ें बनायी हैं जो सन्तोषजनक हैं। लेकिन यह बहुत विरल है। और, सामान्य तौर पर, मुझे लगता है कि बात लगभग उलटी है।

मैंने प्राणिक और मानसिक जगत् में उनमें से कुछ रूप देखे हैं जो सचमुच मनुष्य के रचे हुए थे! परे की एक शक्ति है जो अभिव्यक्त होती

है। लेकिन मिथ्यात्व के इस त्रिविध जगत् में मनुष्य ने—कम या अधिक रूप में—भगवान् को सचमुच अपने ही आकार में गढ़ा है, और ऐसी सत्ताएँ हैं जो उन रूपों में अभिव्यक्त होती हैं जो मानव के सर्जनशील विचार का परिणाम हैं। और तब, यह सचमुच भयंकर होता है! मैंने ऐसी कुछ रचनाएँ देखी हैं... *(मौन)* और वे इतनी अन्धकारपूर्ण होती हैं, इतनी अबोधगम्य, इतनी अर्थशून्य... कुछ देवता हैं जिनके साथ औरों की अपेक्षा ज़्यादा बुरा व्यवहार किया जाता है। उदाहरण के लिए, वह बेचारी महाकाली, जानते हो, उसके साथ कैसी चीज़ें की जाती हैं!... यह इतना *भयंकर* है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती! लेकिन यह चीज़ केवल बहुत निचले जगत् में होती है... हाँ, निम्नतम प्राण में; और इसमें मूल सत्ता की जो चीज़ होती है... वह प्रतिच्छाया है जो मूल से इतनी दूर होती है कि उसे पहचाना नहीं जा सकता। फिर भी, सामान्यतः, इसी को मानव चेतना अपनी ओर आकर्षित करती है। और जब तुम एक मूर्ति बनाते हो, है न, और पुजारी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है—जब मूर्ति-स्थापना का धार्मिक अनुष्ठान यथाविधि किया जाता है, तो पुजारी आह्वान करने की आन्तरिक अवस्था में जाता है और एक ऐसे रूप को या देवता की किसी अंश-विभूति को मूर्ति में उतारने की कोशिश करता है जो उसे शक्ति प्रदान करे—अगर वह पुजारी ऐसा व्यक्ति है जिसमें सचमुच आह्वान करने की शक्ति है तो वह सफल हो सकता है। लेकिन सामान्यतः—हर चीज़ में अपवाद होते हैं—लेकिन सामान्यतः पुजारी ऐसे व्यक्ति होते हैं जो परम्परागत सामान्य प्रथाओं द्वारा प्रशिक्षित होते हैं। हाँ, तो जब वे उस देवता के बारे में सोचते हैं जिसका वे आह्वान कर रहे हैं तो वे उनको प्रदान किये गये सब गुणों और रूपों को मन में रखते हुए सोचते हैं, और, साधारणतः, वह आह्वान प्राण-जगत् की सत्ताओं को या अधिक-से-अधिक मानसिक जगत् की सत्ताओं को सम्बोधित हो जाता है, स्वयं 'परम सत्ता' को नहीं। और यही वे छोटी-छोटी सत्ताएँ हैं जो इस या उस मूर्ति में अभिव्यक्त होती हैं। छोटे मन्दिरों में, यहाँ तक कि परिवारों में भी—कुछ लोगों के घरों में, जानते हो, छोटे-से मन्दिर होते हैं जिनमें कुल-देवता की मूर्ति होती है—ये सत्ताएँ उनमें अभिव्यक्त होती हैं; कभी-कभी तो इससे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम आते हैं, क्योंकि ये ऐसे रूप हैं जो मूल देवता से **इतनी** दूर हैं कि... वे

बेढंगी रचनाएँ होती हैं। कुछ परिवारों में ऐसी कालियों की पूजा की जाती है जो सचमुच दानव-सी होती हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३१३-१५

श्रीमाँ के फ़ोटो

मधुर माँ, आपके बहुत सारे फ़ोटो हैं जिनमें से हर एक में अलग भाव हैं, तो जब हम इनमें से किसी एक पर एकाग्र होते हैं, तो क्या हम जिस फ़ोटो पर एकाग्र हों उससे हमारे लिए कोई फ़र्क पड़ता है?

अगर तुम जान-बूझ कर करते हो, तो हाँ, निश्चय ही। अगर तुम इस चित्र को किसी विशेष कारण से चुनते हो और दूसरी को किसी और कारण से, तो निश्चय ही। उसका प्रभाव होता है। यह ऐसा है जैसे तुम माता के एक रूप की जगह दूसरे रूप पर एकाग्र होते हो; उदाहरण के लिए, अगर तुम महाकाली या महालक्ष्मी या महेश्वरी पर एकाग्र होओ तो परिणाम अलग-अलग होंगे। तुम्हारे अन्दर जो भाग इन गुणों को उत्तर देता है वह जागेगा और ग्रहणशील बन जायेगा। तो, यह बात है। लेकिन अगर किसी के पास एक ही फ़ोटो है, वह चाहे कोई-सी क्यों न हो, और वह उस पर एकाग्र हो, चूँकि उसके पास एक ही है इसलिए इसमें और उसमें चुनाव न करे, तो इसका कोई महत्त्व नहीं है कि वह कौन-सी है। क्योंकि फ़ोटो पर एकाग्र होने का तथ्य ही व्यक्ति को 'शक्ति' के सम्पर्क में ला देता है, और यही चीज़ है जो ज़रूरी है, हर किसी के लिए, जिसमें प्रत्युत्तर देने की सहज क्षमता है।

केवल तभी जब एकाग्रता करने वाला व्यक्ति किसी विशेष सम्बन्ध के लिए अपनी कोई विशेष इच्छा अपनी एकाग्रता में जोड़ देता है तो उसका असर होता है। अन्यथा सम्बन्ध अधिक व्यापक होता है, और वह हमेशा एकाग्रता करने वाले की अभीप्सा या आवश्यकता की अभिव्यक्ति होता है। अगर वह बिलकुल तटस्थ हो, अगर वह चुनाव न करे, किसी वस्तु-विशेष के लिए अभीप्सा न करे, अगर वह यूँ हो जाये, कोरे काग़ज़ की तरह, और बिलकुल तटस्थ, तो उसकी एकाग्रता का उत्तर वे शक्तियाँ और वे रूप देंगे जिनकी उसे ज़रूरत है और शायद वह व्यक्ति स्वयं यह न जानता होगा कि उसे कौन-सी विशेष वस्तुओं की ज़रूरत है, क्योंकि बहुत कम

लोग अपने बारे में सचेतन होते हैं। वे एक बहुत अस्पष्ट-सी भावना में जीते हैं, उनके अन्दर अस्पष्ट अभीप्साएँ होती हैं जो मुश्किल से पकड़ में आती हैं; वह कोई व्यवस्थित, समन्वित, संकल्पित चीज़ नहीं होती जिसमें स्पष्ट दृष्टि हो, उदाहरण के लिए, उसमें यह स्पष्टता नहीं होती कि व्यक्ति किन कठिनाइयों पर विजय पाना चाहता है या कौन-सी क्षमताएँ प्राप्त करना चाहता है; साधारणतः, यह भी एक काफ़ी विकसित साधना का परिणाम है। ठीक-ठीक किस चीज़ की ज़रूरत है यह जानने के लिए ज़रूरी है कि उसने बहुत मनन किया हो, बहुत अवलोकन किया हो, बहुत अध्ययन किया हो। वरना यह एक धुँधली-सी छाप होती है, तुम उसे पकड़ने की कोशिश करते हो और वह भाग निकलती है...। ऐसा ही है न?

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३०२-०३

महासरस्वती का स्पर्श

वह कौन-सी प्रज्ञा है जो मानव-मस्तिष्क में अधिक गहरे वलयन—gyri, हृदय के प्रकोष्ठों में सर्वथा निर्दोष पट तथा रचना की ऐसी अन्य सूक्ष्मताएँ लायी? क्या यह महासरस्वती का कार्य है?

हाँ—सूक्ष्मांश की जटिलता की समस्त पूर्णता महासरस्वती के स्पर्श की द्योतक है। CWSA खण्ड ३२, पृ. ७२

श्रीमाँ की ज्योति

(क) इस (हीरे के जैसी ज्योति) का अर्थ है श्रीमाँ की मूल शक्ति।

(ख) हीरक-ज्योति भागवत चेतना के हृदय से निकलती है और जहाँ जाती है वहाँ भागवत चेतना की ओर उद्घाटन ले आती है।

(ग) श्रीमाँ का हीरक-ज्योति के साथ उतरने का अर्थ है, तुम्हारे अन्दर होने वाली क्रिया को परात्परा शक्ति का अनुमोदन प्राप्त होना।

(घ) श्रीमाँ की हीरक-ज्योति पूर्ण पवित्रता और शक्ति-सामर्थ्य की ज्योति है।

(ङ) हीरक-ज्योति भगवान् की केन्द्रीय चेतना और शक्ति है।

*

श्रीमाँ की ज्योति सफ़ेद होती है—विशेषकर हीरे-जैसी सफ़ेद। महाकाली का रूप साधारणतया सुनहला होता है, बहुत उज्ज्वल और तीव्र सुनहला।

*

हीरा श्रीमाँ की तीव्रतम ज्योति का प्रतीक है, इसलिए तुम्हारे अन्तर्दर्शन यह दर्शाते हैं कि तुमने उन्हें उस ज्योति से भरपूर तथा उसे विकीरित करते देखा। दूसरे जवाहर अन्य शक्तियों के प्रतीक होंगे, माणिक (Ruby) भौतिक में शक्ति का प्रतीक माना जाता है।

*

हीरा श्रीमाँ की चेतना का प्रतीक है; रंग उस विशेष शक्ति का द्योतक होता है जिसे उनकी चेतना उस समय तुम्हें प्रदान करती है।

*

हीरा श्रीमाँ की ज्योति और क्रियाशक्ति का सूचक है—हीरे की जैसी ज्योति अपने तीव्रतम रूप में उनकी चेतना की ज्योति है।

*

आज प्रणाम के समय मैंने एक सुनहरा धागा देखा जो श्रीमाँ से निकल कर मेरी ओर आ रहा था, लेकिन कुछ समय में वह ग़ायब हो गया। एक बार, नीचे उतरने के ठीक पहले जब माँ छत पर खड़ी थीं, मैंने बहुत स्पष्ट रूप में यह ज्योति देखी थी। यह प्रकाश अन्दर से आ रहा है या बाहर से? चूँकि मैंने यह बहुत कम समय के लिए देखा, मैं स्वयं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ।

सुनहली ज्योति भागवत सत्य की ज्योति है जो साधारण मन से ऊपर के उच्चतर लोकों में दिखायी देती है—यह मूलतः अतिमानसिक ज्योति है। यह मन से ऊपर दिखायी देने वाली महाकाली की भी ज्योति है। सफ़ेद ज्योति की तरह सुनहली ज्योति भी प्रायः ही श्रीमाँ से निकलती हुई दिखायी देती है।

*

सुनहली ज्योति की रेखा उच्चतर भागवत सत्य की ज्योति की रेखा है जो हृदयाकाश में चारों ओर छा रही थी। हीरक-पुञ्ज श्रीमाँ की ज्योति है जो उस आकाश में बरस रही थी। अतएव, यह इस बात का चिह्न है कि हृदय-केन्द्र में (चैत्य और भाव के केन्द्र में) उन शक्तियों की क्रिया

हो रही है।

*

एक दिन मैंने एक विशाल ज्योति देखी, पीली आभा लिये हुए सफ़ेद, शीतल और शान्त जो ऊपर से उतर रही थी। क्या यह उच्चतर मानस-चेतना या फिर किसी आध्यात्मिक चेतना की ज्योति है?

यह पीले रंग की आभा पर निर्भर करता है। यदि वह सुनहरा सफ़ेद है तो वह मन से ऊपर के स्तर से आता है और रंगों का यह संयोग महेश्वरी-महाकाली की शक्ति का सूचक है। उच्चतर मन का रंग फीका नीला है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २६६-६८

'कृपा' को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकारने का क्या तरीक़ा है?

आहा! सबसे पहले तो तुम्हें उसकी आवश्यकता अनुभव करनी होगी।

यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है। तुम्हारे अन्दर एक प्रकार की आन्तरिक नम्रता होनी चाहिये जो इस बात का भान कराती है कि तुम भागवत 'कृपा' के बिना कितने असहाय हो, कि सचमुच, उसके बिना तुम अपूर्ण और शक्तिहीन रहते हो। आरम्भ में, यही सबसे पहली चीज़ है।

यह एक ऐसा अनुभव है जिसे भली-भाँति किया जा सकता है। जब ऐसे लोग, जो कुछ भी नहीं जानते, अपने-आपको बहुत कठिन परिस्थितियों में पाते हैं, या किसी ऐसी समस्या में उलझ जाते हैं जिसे हल करना ही होगा, या जैसा कि मैंने अभी कहा, किसी ऐसे आवेग में आ जाते हैं जिसे जीतना ज़रूरी है, या अगर किसी वस्तु ने उन्हें व्याकुल कर दिया है... और उस समय वे अपने-आपको खोया-खोया-सा अनुभव करते हैं, उनकी समझ में नहीं आता कि वे क्या करें—उनका मन, उनका संकल्प, उनकी भावनाएँ, कोई भी सहायता नहीं करते—वे नहीं जानते कि क्या करें, तब यह होता है; उनके अन्दर से एक पुकार-सी उठती है, एक ऐसे के प्रति पुकार जो वह सब कर सकता है जिसे वे नहीं कर सकते। व्यक्ति उस चीज़ के प्रति अभीप्सा करता है जो वह काम करने में समर्थ है जिसे वह स्वयं नहीं कर सकता।

यह पहली शर्त है। और फिर, अगर तुम्हें इस बात का भान हो जाये

कि केवल भागवत 'कृपा' ही यह कर सकती है, कि तुम अपने-आपको जिस परिस्थिति में पाते हो उसमें से केवल 'कृपा' ही तुम्हें उबार सकती है, वही तुम्हें उसमें से निकलने के लिए उपाय बता सकती है और बल दे सकती है, तो स्वभावतः, तुम्हारे अन्दर एक तीव्र अभीप्सा जागेगी—एक ऐसी चेतना जो अपने-आपको उद्घाटन में बदल लेगी। अगर तुम आवाहन करो, अभीप्सा करो और उत्तर पाने की आशा करो, तो तुम बिलकुल स्वाभाविक रूप से अपने-आपको भागवत 'कृपा' की ओर खोलोगे।

और बाद में—तुम्हें इसकी ओर बहुत ध्यान देना चाहिये *(माताजी ओठों पर अंगुली रखती हैं)*—भागवत 'कृपा' तुम्हें उत्तर देगी, भागवत कृपा तुम्हें कष्ट में से उबार लेगी, भागवत 'कृपा' तुम्हें समस्या का समाधान बतलायेगी या तुम्हें अपनी कठिनाई में से निकल आने में सहायता देगी। लेकिन जब तुम कष्ट से छुटकारा पा जाओ और कठिनाई में से निकल आओ, तो यह न भूलो कि भागवत 'कृपा' ने ही तुम्हें उबारा है, यह न सोचो कि यह तुमने स्वयं किया है। क्योंकि वास्तव में, यह महत्त्वपूर्ण बात है। कठिनाई ख़तम होते ही अधिकतर लोग कहते हैं : "आख़िर, मैंने अपने-आपको बड़ी अच्छी तरह कठिनाई में से निकाल लिया।"

तो यह बात है। इस तरह तुम दरवाज़ा बन्द कर देते हो, उस पर ताला जड़ कर चटकनी चढ़ा देते हो, और फिर तुम और कुछ नहीं पा सकते। इस आन्तरिक मूढ़ता को दूर करने, और तुम्हें यह अनुभव कराने के लिए कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हें फिर से किसी तीव्र व्यथा की, किसी भयानक कठिनाई की ज़रूरत होती है। क्योंकि तभी तुम ज़रा-सा खुलते और लचीले बनते हो जब तुम्हें यह पता लग जाये कि तुम बलहीन हो। लेकिन जब तक तुम यह समझते हो कि जो कुछ तुम करते हो वह तुम्हारे अपने कौशल और अपनी क्षमता पर निर्भर है, तो सचमुच, तुम केवल एक दरवाज़ा नहीं, एक के बाद एक बहुत से दरवाज़े बन्द कर देते हो, समझे, और उनमें चटकनी लगा देते हो। तुम अपने-आपको एक क़िले में बन्द कर लेते हो, और वहाँ कोई चीज़ प्रवेश नहीं कर सकती। यह सबसे बड़ी त्रुटि है : आदमी बहुत जल्दी भूल जाता है। बिलकुल स्वाभाविक रूप में, वह अपनी निजी क्षमता से सन्तुष्ट रहता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३६४-६६

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. अचञ्चल सहनशीलता सफलता का निश्चित मार्ग है।

२. भागवत कृपा हमेशा रहती है, लेकिन उसकी उपस्थिति केवल निष्कपट के आगे ही प्रकट होती है।

३. निष्कपट बनो, भागवत शान्ति पाने के लिए यह पहला अनिवार्य क़दम है।

४. आदमी उसी के सादृश्य में बढ़ता है जिससे वह प्रेम करता है।

५. शान्ति तब आयेगी जब तुम अपने विचार अपनी ओर से मोड़ लोगे।

६. शान्ति अपरिमित हो, नीरवता गहरी और स्थिर, अचञ्चलता निष्कम्प और भगवान् पर विश्वास हमेशा बढ़ता हुआ हो।

७. हर व्यक्ति में आध्यात्मिक सम्भावनाएँ होती हैं, प्रश्न होता है उनको विकसित करने के लिए इच्छा-शक्ति के होने का।

८. हमेशा शिकायत करते रहना पूरी तरह समय और ऊर्जा को नष्ट करना है।

९. तुमने एक भूल की और तुम्हें चुपके से अपनी भूल के परिणामों को स्वीकार कर लेना चाहिये। यह प्रगति करने और आगे से भूल न करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है।

१०. हर एक अपने-आप अपने दुःखों का शिल्पी होता है।

११. औरों के दोषों की जगह अपने दोषों की परवाह करो।

१२. कोशिश छोटी-सी चीज़ है, लेकिन वह भविष्य के लिए प्रतिज्ञा हो सकती है।

१३. तुम जो कुछ करते हो उसी में सुख पाने की कोशिश करो, लेकिन कभी कोई चीज़ सुख के लिए न करो।

१४. तुम जो नहीं हो वह होने का ढोंग न करो। पाखण्डी होने की अपेक्षा सच्चा, स्पष्टवादी होना ज़्यादा अच्छा है।

१५. सुख को ढूँढ़ना कष्ट को माँगना है, क्योंकि ये एक ही चीज़ के चित और पट हैं।

१६. परम सत्य को अपनी शक्ति मानो, परम सत्य को अपना आश्रय मानो। सत्य हमारे अन्दर है, हमें केवल उसके बारे में अवगत होना है।

१७. जगत् तुम्हें तभी तक कष्ट देगा जब तक तुम संसार के भाग बने रहो। केवल तभी जब तुम पूरी तरह भगवान् के हो जाओ, तुम मुक्त हो सकते हो। —**श्रीअरविन्द**

१८. सहन करना श्रेष्ठ भाव से भरपूर होना है; इसका स्थान पूर्ण समझ को लेना चाहिये।

१९. केवल वही कभी पराजित नहीं होता जो पराजित होना अस्वीकार करता है।

२०. असामञ्जस्य के बाहरी कारणों की अपेक्षा अधिक खोज करो आन्तरिक कारणों की। अन्तर ही बाह्य पर शासन करता है।

२१. तुम्हें यह जानना चाहिये कि चुपचाप रहना भगवान् के कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी है।

२२. सारी सृष्टि उस मनुष्य से भगवान् की बातें करती है जो अपने हृदय में सुनना जानता है।

२३. एकमात्र कार्य, एकमात्र उद्देश्य, एकमात्र आनन्द हैं—भगवान्।

२४. उच्चतम प्रेरणाओं का स्रोत मौन में है।

२५. भगवान् से प्रेम करने और धरती पर 'उनकी' सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।

२६. मानवजाति की एकता जानी हुई और मानी हुई बात है।
परन्तु मानवजाति की बाहरी एकता मनुष्य की सद्भावना और निष्कपटता पर निर्भर करती है।

२७. श्रद्धा एक ऐसी निश्चिति है जिसका आधार अनिवार्यतः अनुभव और ज्ञान पर नहीं होता।

२८. नमनीयता है, अपेक्षित प्रगति के लिए हमेशा तैयार रहना।

२९. मैं तुम्हारे हृदय में हूँ ताकि तुम ख़ुश रहो, तुम्हारे सिर में हूँ ताकि तुम शान्त रहो और तुम्हारे हाथों में हूँ ताकि उनमें कौशल आये।

३०. अगर तुम संसार में ऐक्य चाहते हो तो पहले अपनी सत्ता के विभिन्न भागों को एक करो।

श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार

(रवीन्द्रजी ने गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविन्द के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में २१ वर्ष की अवस्था में प्रवेश पाया था। २००१ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे यहीं के अन्तेवासी रहे।)

प.ले. का अर्थ है, पत्र-लेखक—सं.

माताजी,

मुझे अभी तक यह भ्रम था कि लोगों के काम की व्यवस्था मुझे करनी है। 'क' की अवस्था बहुत ख़राब है, 'घ' भी बीमार है इसलिए मैंने सोचा था कि 'ग' को 'ऑनेस्टी सोसायटी' में काम दिया जा सकता है। वह व्यापारी रहा है। लेकिन जैसा कि बहुत बार होता है, मामला मेरे पास आया तक नहीं और मैंने सुना है कि उसे किसी और स्थान पर दे दिया गया है, वह भी आपके आदेश पर!! वहाँ तो अभी कुछ ही दिन पहले मैं किसी और को अस्थायी रूप में दे चुका हूँ। मुझे लगता है कि 'क' की आवश्यकता कहीं अधिक ज़रूरी है, लेकिन अगर यह आपका फ़ैसला है तो मैं उसके आगे सिर झुकाता हूँ।

हर बार जब कोई अप्रिय स्थिति पैदा होती है या किसी अवाञ्छनीय व्यक्ति से पाला पड़ता है तो उसे धार्मिक भाव से मेरे पास भेज दिया जाता है अन्यथा... और आप कहती हैं कि काम देने की ज़िम्मेदारी मेरी है।

(इस झल्लाहट का मधुर, कोमल, विनम्रतापूर्ण उत्तर देते हुए माताजी कहती हैं)

मेरे प्रिय बालक,

क्या मैं यह मानूँ कि तुम बदमिज़ाज हो उठे हो या तुम्हारे अहंकार को ग़लत जगह छेड़ दिया गया है?... तुम बहुत ही कटु लग रहे हो, लेकिन मेरी ओर से तो कभी कुछ भी निर्णायक फैसला नहीं हुआ करता जब तक कि तुम्हारी सलाह न ले ली जाये कि सबसे ज़्यादा ठीक चीज़ क्या होगी।

लेकिन परवाह न करो—अगर तुम्हें लगता है कि चीज़ें ठीक तरह नहीं चल रहीं और उनके लिए मैं ज़िम्मेदार हूँ तो मैं ज़िम्मेदारी स्वीकार करती हूँ।

इस मामले में मुझे यह जान कर ख़ुशी हुई कि 'ग' 'ऑनेस्टी सोसायटी' में ज़्यादा उपयोगी हो सकता है, तो हम उसे वहीं भेजेंगे और आशा करेंगे कि सब कुछ ठीक हो जायेगा। लेकिन यह बात बिलकुल सच्ची है कि मैं अधिकतर किसी ऐसे काम में व्यस्त रहती हूँ जिसे मैं, अभी के लिए, बाहरी व्यवस्था और संगठन से अधिक ज़रूरी समझती हूँ और मैं आशा करती हूँ कि हर एक अपना काम अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ करे और उसकी आँखें भागवत कार्य की महानता पर लगी रहें, इससे हर एक को अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों में भी निश्चित रूप से मदद मिलेगी।

आजकल समय बुरा है, हर एक के लिए और हर चीज़ के लिए —लेकिन निश्चय ही यह हमें अपनी सीमाओं पर विजय पाना सिखाने के लिए है।

मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है, मैं तुम पर भरोसा करती हूँ, मुझे तुम्हारे काम की ज़रूरत है और मुझे विश्वास है कि तुम इन वर्तमान कठिनाइयों को पार कर लोगे।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ। ६ अगस्त १९६२

'क्ष' यह क़लम नेपाल से लाया है और उसने मुझे उपहार-स्वरूप दिया है। यह चीन का बना हुआ है और मैं इसे इस विश्वास के साथ आपकी सेवा में रख रहा हूँ कि इससे चीन का भला होगा और भारत-चीन के सम्बन्ध ज़्यादा अच्छे हो जायेंगे

यह रही इसकी लिखावट। क़लम अच्छा मालूम होता है—चीन को आशीर्वाद। २७ अगस्त १९६२

माताजी, कल दोपहर को मैं सो रहा था और आप मेरे स्वप्न में आयीं और आपने मुझसे कुछ कहना शुरू किया। उसी समय किसी ने मेरा दरवाज़ा खटखटाया और मैं जाग उठा। यह तीन बार हुआ और तीनों बार किसी ने मुझे जगा दिया, मैं उठा तो मेरे सिर में सख़्त दर्द था। मुझे अपने स्वप्न मुश्किल से ही याद रहते हैं, लेकिन यह

बहुत ही स्पष्ट था। क्या आप सचमुच मुझसे कुछ कहना चाहती थीं?

हाँ, निश्चय ही, मैं तुम्हारे पास आयी थी—और केवल इसी बार नहीं—आग्रह के साथ तुमसे सामान्य काम-काज, आश्रम के मामले और तुम्हारी साधना के बारे में मुझे कुछ कहना था यानी, मुझे तुम्हारी प्रगति की बात कहनी थी।

क्या लोगों को द्वार खटखटाने से रोकने का कोई तरीक़ा नहीं है?

तुम्हारे दरवाज़े पर सूचना लिख दी जाये : "कृपया इस समय न खटखटायें।"

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ अक्तूबर १९६२

नीरवता! नीरवता!

यह ऊर्जाएँ इकट्ठी करने का समय है, व्यर्थ और निरर्थक शब्दों में उन्हें इधर-उधर बिखेरने का नहीं।

जो भी देश की वर्तमान स्थिति के बारे में अपनी राय की ज़ोर से घोषणा करता है उसे यह समझ लेना चाहिये कि उसकी रायों का कोई मूल्य नहीं है और उनसे भारतमाता को अपनी कठिनाइयों में से निकलने में ज़रा भी सहायता नहीं मिल सकती। अगर तुम उपयोगी होना चाहते हो तो पहले अपने-आपको संयमित करो और चुप रहो।

नीरवता! नीरवता! नीरवता!

केवल नीरवता में ही कोई महान् कार्य किया जा सकता है।

२८ अक्तूबर १९६२

सभी आश्रमवासियों को दर्शकों और विदेशियों के साथ
(और आपस में एक दूसरे के साथ भी)
व्यवहार करते समय याद रखने-लायक़ एक अच्छी सलाह :

"अगर तुम्हारे पास आश्रम के किसी व्यक्ति या किसी चीज़ के बारे में कहने के लिए कोई अच्छी बात न हो तो चुप रहो।

"तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह चुप रहना भगवान् के कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी है।"

अक्तूबर १९६२

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३१५-१८

पायल की झंकार

(हर देश की अपनी-अपनी कहानियाँ होती हैं और भारत देश तो कथा-कहानियों का ऐसा अगाध महासागर है कि हम कहानीरूपी मोती जो बीनना शुरू करें तो बीनते ही चले जायें। और आश्चर्य तो होता है तब, जब सुनी कहानियों पर भी "अरे यह तो सुनी है" का कई बार बिल्ला भी नहीं चिपकता, क्योंकि ये कथाएँ अपने गर्भ में जो सत्य छिपाये रहती हैं वह चिरन्तन, सदाबहार होता है।—सं.)

पुत्रवियोग से दुःखी कवि कम्बन इधर-से-उधर भटकते-भटकते चेरन राजा के दरबार में आ पहुँचे और अपना परिचय दिया सामान्य कवि के रूप में। राजा के दरबार में पहले से ही सैकड़ों कवि थे, एक की बढ़ोतरी से कोई विशेष बात न हुई।

विशेष तो तब घटा जब राजा अपने राजकवि के मुख से कम्बन-रामायण सुन रहे थे—खचाखच भरी सभा रामायण के अमृतसागर में आकण्ठ डूबी थी, राजकवि के मुख से धाराप्रवाह श्लोक फूट रहे थे कि अचानक... चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। कविवर का प्रवाह सहसा रुक गया। वे आगे के श्लोक अचानक भूल गये। उन्हें निरुपाय देख कम्बन सहायता के लिए उठे नहीं कि कवि ने त्योरी चढ़ा कर फिर बोलना शुरू कर दिया।

"महाकवि! आप बीच के कुछ श्लोक भूल गये!" अनायास कम्बन बोल उठे।

"कौन है तू? सामान्य कवि होकर इतनी स्पर्धा! मुझे चुनौती दे रहा है!" अहंकार के रोष में राजकवि गरज उठे।

पल-भर के लिए सभा में सन्नाटा छा गया, फिर राजा का गभीर स्वर गूँज उठा—"कविवर, हमारे राजकवि की भूल निकालने का साहस आप में है तो आगे आइये, नहीं तो कठोर दण्ड के भागी बनेंगे आप।"

निर्भीक कविवर सभा के बीच आ खड़े हुए और रामायण का ऐसा मधुर, सस्वर पाठ किया कि देश और काल से अनभिज्ञ सारी सभा चित्रलिखित-सी सवेरा होने तक आनन्द-सागर में आकण्ठ डूबी रही।

कवि का पाठ समाप्त हुआ। सभा से मानों मायाजाल हटा। रुँधे गले

से राजा बस इतना ही बोल पाये—"कविवर, कौन हैं आप? आज अपना सच्चा परिचय दीजिये।"

लेकिन कवि ने फिर भी अपना सत्य परिचय न दिया। बोले—"राजन्, महाकवि कम्बन का सहायक हूँ मैं। जब उन्होंने सुप्रसिद्ध महाकाव्य रामायण लिखा तो मैं उनके साथ ही था। वे रोज़ ७०० श्लोक लिखा करते थे। स्वयं देवी सरस्वती उनके घर उतर कर कवि के लिए प्रकाशदीप पकड़े रहती थीं।"

महाराज गद्गदहृदय बोल उठे—"कविवर, धन्य हुआ मैं आपको पाकर। रामायणपाठ के प्रमुख कवि के रूप में आपको नियुक्त करता हूँ मैं आज से—हर शाम हमारी गोष्ठी हुआ करेगी।"

राजमहल के सामान्य कवि को रातोरात प्रसिद्धि के शिखर पर चढ़ते देख दूसरे कवियों को ईर्ष्या, द्वेष, डाह ने धर दबोचा।

षड्यन्त्र को ज़ोर पकड़ते देर न लगी। अप्रसन्न कविगण ने परस्पर मन्त्रणा की कि राजा के इस नये दुलारे को दुनिया से नहीं तो राजमहल से तो हर हालत में निकालना है और प्रचुर धन देकर इस षड्यन्त्र के जाल में फाँसा राजा के नाई को। दूसरे दिन खचाखच भरी राजसभा में अचानक राजनाई ने प्रवेश किया। कम्बन को गले लगा, बुक्का फाड़ कर जो उसने रोना शुरू किया तो क्या राजा, क्या दरबारी और क्या कम्बन--सभी भौचक्के के भौचक्के रह गये—"मेरे भाई, कहाँ थे तुम इतने वर्षों तक, मैंने तुम्हें कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा, आज मेरे भाग जगे जो तुमसे मिलन हो गया।" इतना कह कर फिर नाई की घिग्घी बँध गयी।

कम्बन को उसी तरह बैठा देख नाई फिर उसको गले लगा कर रोते-रोते बोला—"क्या तुम सब कुछ भूल गये, बचपन में घर छोड़ कर आ गये थे, लेकिन क्या मैं अपने सगे भाई को कभी भूल सकता हूँ?"

अचानक कविवर की समझ में सारी बात आ गयी। उन्होंने भी उसे गले लगा कर रोने का नाटक शुरू कर दिया।

अपना षड्यन्त्र फलते देख राजदरबार के दूसरे कवियों की बाँछें खिल गयीं, राजा काठ की मूर्ति-से बन गये और सभा के बाक़ी लोगों में आपस में खुसुर-पुसुर चलने लगी।

अचानक राजकवि का व्यंग्यभरा वाक्य सभा को चीर गया—"ओह!

अब तो नाई भी कविश्रेष्ठ बनने लगे!"

धर्मसंकट में पड़े राजा ने उस दिन सभा विसर्जित कर दी। अब राजा को न दिन में चैन न रात को आराम! "क्या करूँ, क्या न करूँ" बस ये ही दो वाक्य हथौड़े की तरह उनके कानों में निरन्तर बज रहे थे।

दो दिन इसी तरह बीत गये, कम्बन भी उन्हें कहीं न दीखे। कम्बन के बिना पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह असहाय-से राजा फड़फड़ाते रहे। तीसरे दिन महारानी के बहुत ज़ोर देने पर महल के उपवन में गये। वहाँ पहले से ही कम्बन को प्रतीक्षा करते देख राजा प्रसन्नचित्त हो उठे। उसे गले से लगाते हुए पूछा—"कहाँ चले गये थे कविवर?"

एक पिटारी निकाल कर राजा के हाथों में देते हुए कम्बन बोले —"राजन्, इतने वर्षों के बाद भाई के साथ मिलन हुआ, दो दिन पलक झपकते बीत गये। मेरे हिस्से में यह सम्पत्ति आयी है, मैंने सोचा, यह महारानी के पैरों की शोभा बढ़ाये, मुझ जैसे निर्धन कवि के घर इसका मेल नहीं बैठेगा।"

राजा आश्चर्य में पड़ गये, महारानी उत्सुक हो उठीं। मञ्जूषा खोल कर देखा तो दोनों की आँखें फटी की फटी रह गयीं। इतनी सुन्दर सोने की पायल उन्होंने सपने में भी न देखी होगी। अलौकिक, दिव्य थी वह, लेकिन एक पैर की पायल देख राजा बोल उठे—"कविवर, इसकी जोड़ी कहाँ है?"

"महाराज, वह मेरे भाई के हिस्से आयी, ज़रूर उसी के पास होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि महारानी के चरण-कमलों की शोभा बढ़ाने के लिए वह भी उसे देने में आनाकानी न करेगा।" कम्बन बोल उठे।

महारानी चहक उठीं। दूसरे दिन सवेरे सभा में नाई को बुलाया गया। पायल के बारे में उसे एकदम अनभिज्ञ देख राजा को शंका ने आ घेरा। अब उन्हें सच्चाई का पता लगाना था। यातना के भय से नाई ने सबके सामने जल्दी ही सच्चाई उगल दी। लज्जा और भय के मारे सभी षड्यन्त्रकारी थर-थर काँपने लगे, लेकिन राजा को अपने प्रश्न का समाधान न मिला। कम्बन से पूछ बैठे—"कविवर! मेरा प्रश्न तो ज्यों का त्यों बना है। कहाँ से पायी आपने यह अपार्थिव पायल?"

मन्द-मन्द मुस्कान खेल उठी कवि के दमकते मुखमण्डल पर क्योंकि दूर से आती हुई पायल की झंकार को वे सुन रहे थे।

धीरे-धीरे पास आता हुआ पायल का मधुर स्वर सबके कानों में घण्टियाँ बजाने लगा, लेकिन वह पायल दृष्टिगोचर थी बस कवि कम्बन के लिए।

साष्टांग प्रणाम कर, हाथ जोड़े कवि बोल उठे—"महाराज, यह पधार रही हैं देवी सरस्वती।"

पायल की आवाज़ बन्द हो गयी, देवी की वाणी सबने सुनी—"कम्बन, वत्स कम्बन, कहाँ है मेरी दूसरी पायल?"

यन्त्र की भाँति, वहाँ खड़े लोग अनायास बोल उठे—"क्या कम्बन!! यहीं हमारे बीच खड़े हैं कविश्रेष्ठ कम्बन!!!"

उसी तरह हाथ जोड़े कम्बन विनयपूर्वक बोले—"देवि! आपकी पायल महाराज के हाथ में है।"

जो कहानी सुन रहे हैं यह उनकी कल्पना के परे की बात हो, लेकिन राजा के दरबार में उस दिन जितने लोग थे सबने अपनी आँखों से महाराज के हाथ से पायल को अन्तर्धान होते देखा। और कुछ ही देर बाद उन्हें सुनायी दिया राजमहल से धीरे-धीरे दूर जाता हुआ युगल-नूपुरों का स्वर।"

जिसने देवी के दर्शन किये उसके चरणों में गिर कर कविगण, सभासद् और राजा ने अपना जीवन सार्थक किया।

'पुरोधा', मई २००८ से —वन्दना

सरस्वती-वन्दना

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ वस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर् देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।

जो विद्या की देवी भगवती सरस्वती कुन्द के फूल, चन्द्रमा, हिमराशि और मोती के हार की तरह श्वेत वर्ण की हैं और जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, जिनके हाथ में वीणा-दण्ड शोभायमान है, जिन्होंने श्वेत कमलों पर अपना आसन ग्रहण किया है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आदि देवताओं द्वारा जो सदा पूजित हैं, वही सम्पूर्ण जड़ता और अज्ञान को दूर कर देने वाली माँ सरस्वती, आप हमारी रक्षा करें। —'सत्संग पथ' से साभार

Revised Rates of Membership Subscription

With effect from 1st April 2021

Membership Options	Period	In India		Outside India	
		Code	₹	Code	Air Mail
Member without Magazine	1 Year	O	30.00		US $ (or equivalent)
Member with Magazine	1 Year	M	200.00	F	25.00
Member with Magazine	3 Years	M	580.00	F	75.00
Member with Magazine	5 Years	M	960.00	F	125.00
Donor Member	10 Years	D	4000.00	G	375.00
Institutional Member	1 Year	I	1500.00	U	250.00
Corporate Member	20 Years	R	25000.00	N	3000.00

If you have any queries related to membership,
email us at membership@aurosociety.org.

Date of Publication: **1st April 2021**
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70